

दो शब्द

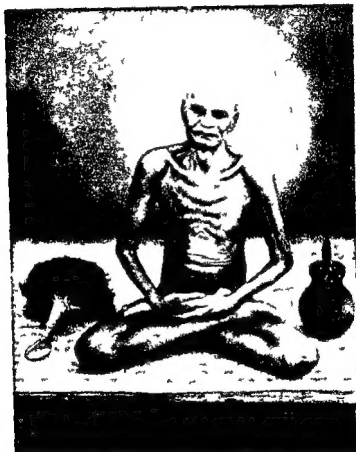
यह परम अध्यात्म मातृशब्द श्री भद्रवती लक्ष्मीजी का न
रुत पहले समझात करके रखा था। इस समय तार कृतज्ञ के
प्रयोग काचय अर्थ जन्ति दिये गये हैं। समयसार भाग
आध्यात्मिक ग्रंथ है। अध्यात्म की गति रखने वाले पुरुषों के
लिये अरत उपयोगी है। ग्रंथ में १२ पद्यों का मुद्र विवचन
रिया गया है। संसार में सभी प्राणी भौतिक चाकचिक्य में
पगे रहकर सुखी बनना चाहते हैं परन्तु आत्मा लक्ष्मी और
जैतिष्ठा दोनों भिन्न भिन्न मार्ग हैं दोनों पर प्रवृत्ति न होकर
किन्हीं एक पर ही प्राणी की प्रवृत्ति हो सकती है। इसलिये
आत्म वल्ल्याण चाहते प्राता को अध्यात्मरस का आस्वादन
रने के लिये इस ग्रंथ का रसायन और मनन करना चाहिये।
अर्थात् स्थानुद्धि प्राप्त करने के लिये यह अध्यात्मिक ग्रंथ है।
अपने अध्यात्म, प्रेमा को यह ग्रंथ मन्त्रेण अरते पाम
रना चाहिये।

वायूनाल शास्त्री

प्रकाशक '२। गङ्गा' देहली

ॐ

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय निग्रन्थ दि० जैनाचार्य पूज्यपाद
१०८ श्री सूर्यमाण्डजी महाराज
चतुर्मास पहाडी धीगज दहली सं० २००८



जन्मदिवस कार्तिक शुक्ल ६ सं० १९४० ग्राम प्रेमसर (गयालियर)
पेलर दीक्षा आश्विन सुदी ६ सं० १९८१ नन्दौर (मालवा)
मुनिपूजा मगसिर वदी ११ सं० १९८८ हाटपीपल्या (गयालियर)
आचार्यपद प्राप्ति कार्तिक शुक्ल ६ सं० १९८५ फोडरमा (विहार)

॥ श्री चीतरागायनम् ॥

आचार्य श्री १०८ सूर्यसागराय नमः

परम अध्यात्म मार्तण्ड

(अनुष्टुप)

नमः समयसाराय, स्वानुभूत्या चकाशते ।

चित्स्वभावायभावाय, सर्वभावान्तरच्छिदे ॥१॥

अवयवार्थ—(स्वानुभूत्या चकाशते) अपनी अनुभूति के द्वारा प्रकाशमान (चित्स्वभावाय) चैतन्य स्वभाव वाले (भावाय) मत्स्वरूप (सर्वभावान्तरच्छिदे) अपने को छोड़कर सर्व पदार्थों को एक काल में जानने वाले ऐसे (समयसाराय नमः अस्तु) द्रव्यरूप, मानरूप नोरूप से रहित शुद्ध आत्मा के लिये नमस्कार हो ॥१॥

(अनुष्टुप)

अनन्तधर्मणस्तत्त्व पश्यन्तीप्रथगात्मनः ।

अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥२॥

अवयवार्थ—(अनन्तधर्मण आत्मनः) अनन्तधर्म वाली आत्माके (तत्त्वप्रथरूपपश्यन्ती) स्वरूप को प्रथम देखने वाली (अनेकान्तमयीमूर्तिर्नित्यमेव) अनेक हैं धर्म जिसमें ऐसी मूर्ति हमेशा हो (प्रकाशताम्) प्रकाशमान हो ॥२॥

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोमोहिनाम्नोऽनुभावा—

दविरतमनुभाव्य व्याप्ति कल्मापितायाः ।

मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्ते—

र्भवतु समयसार व्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

अ-उपार्थ—(परपरिणतिहेतोमाहनाम्नाऽनुभावात्) पर
परिणति का कारण जो मोहनामा कम असक उक्त म (अविरत
मनुभाव्य व्याप्ति कल्मापिताया) निरंतर रणादिक का व्यापि
से मैली (शुद्धचिन्मात्रमूर्ते) शुद्ध चैतन्यमात्रमूर्ति (अनुभूते)
अनुभूतिसे (ममयसारव्याख्यया) समयसार की व्याख्या मे
(ममएव)मेरी ही (परमविशुद्धि भवतु) परम विशुद्धि हो ॥३॥

(मालिनी)

उभयनयविरोधध्वसिनि स्यात्पदाङ्के ।

जिनवचसि रमते ये स्वयवान्तमोहाः ।

सपदि समयसार ते परम ज्योतिरुच्चै

रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्तएव ॥ ४ ॥

अ-उपार्थ—(उभयनयविरोधध्वसिनिस्यात्पदाङ्के) जो जोना
नयों के विरोध को नाश करने वाली स्यात्पक्षैश्वरित
(जिनवचमिरमते) जिन दो भगवान्के वचनों में लीन रहत हे

(स्वयं वान्तमोहा) और स्वयं बोन गया है मोह निहोका
(ते) वे (उच्च) महान (पर ज्योति) उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप
(अनयम् अनयपक्षानुक्षणम्) अनादि कालीनयोदी नयों को
नष्ट करने वाले (मपदिष्ट) शीघ्र ही [ममयमार ईक्षन्ते]
समयसार को नष्ट करते हैं ॥४॥

(मालिनी)

व्यवहरणनयःस्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या—

मिह निहितपदाना हन्त हस्तावलम्बः ।

तदपि परममर्थचिच्चमत्कारमात्र

परविरहितमन्तः पश्यता नैष किञ्चित् ॥५॥

अनयार्थ—(यद्यपि इह प्राक्पदव्याम् निहितपदाना)
यद्यपि यह पहली अवस्था में अवगान् निश्चयनय में रक्खा है पैर
निहोने (हन्त) हर्ष है कि (व्यवहारनय हस्तावलम्ब स्यात्)
यह व्यवहारनय हस्तावलम्ब हो (तदपिचिच्चमत्कारमात्र) तो
भी चेतन्य चमत्कारमात्र (परविरहित) परसे रहित (परममर्थ)
श्रेष्ठ अर्थ को (यत) अन्तरगमे (पश्यता) देखती है (एष -
किञ्चित् न) यह कुछ भी कार्यकारी नहीं है ॥५॥

(शार्दूललिपीलिखित)

एकत्वेनियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः

पूर्णज्ञानधनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः प्रथक्

सम्यग्दर्शनमेतदेवनियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वानवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तुनः

अथयार्थ—(यत् शुद्धनयन. एकत्वे नियतस्य) जो शुद्ध
नय निश्चयनय से एकत्रय निश्चल (दृष्टाप्नु.) अपने द्रव्यगुण
पर्यायोंम व्याप्त (पूर्णज्ञानघनस्य अस्य आत्मन) पूर्णज्ञानघन
इस आत्मा का जो भेदान है सो (दर्शनम्) दर्शन है यह
दर्शन अथ द्रव्यों से प्रयत्न है (एतदेव सम्यग्दर्शनम्) चित्तना
सम्यग्दर्शन है (अथ आत्मा नियमात् तारान्) उतना ही यह
आत्मा नियम से है (इमाम् नयतन्त्रय-ततिम् मुक्त्वा) यह
नयतन्त्र की सन्तति को छोड़कर (न) हमारे (अथम् एक -
आत्मा अस्तु) यह एक आत्मा हो ॥६॥

(अनुष्टुप ;

अतःशुद्धनयायत्त प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत् ।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुंचति ॥७॥

अथयार्थ—(यत् अतः शुद्धनयायत्त प्रत्यग्ज्योति नय
तत्त्वगतत्वेऽपि चकास्ति) जो इस शुद्धनय का आश्रय करने वाली
जो भिन्न ज्योति नय तत्त्वमें प्राप्त होने हुए भा प्रकाशमान है
(तत् एकत्वं न मुंचति) यह ज्योति एकात्मिकी नहीं छोड़ती ॥७॥

चिरमिति नवतत्त्वञ्चन्नमुन्नोयमान ।

वनकमित्रनिमग्न वर्णमालाकलापे ।

अथ सततविविक्त दृश्यतामेकरूप ।

प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (चिरम्) अनादि कालीन (नवतत्त्वञ्चन्नम्) नवतत्त्व की सतति में छिपी हुई (वर्णमाला-कलापे) वर्णमालाके समुदायमें (निमग्न) डूबे हुए (वनकम् इव) सोने के समान (उन्नोयमान) उठी हुई (सततविविक्त) निरन्तर अलग रहने वाली (प्रतिपदम्) प्रत्येक पद में (उद्योतमानम्) प्रकाशमान (इदम् आत्मज्याति) इस आत्मा की ज्योति को (एकरूप) एक रूप से (दृश्यताम्) देखो ॥८॥

उदयति न नयश्रीरस्तमेतिप्रमाण—

क्वचिदपि च न विद्मो यातिनिक्षेपचक्र ।

किमपरमभिदध्मोधाग्नि सर्वकपेऽस्मि—

अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव ॥९॥

अन्वयार्थ—(नयत्री) नयस्पीलक्ष्मा (न उद्भयति) उद्भय को प्राप्त नहीं होती (प्रमाण) प्रमाण (यस्तम्) अस्तमो (छति) प्राप्त हो जाता है (निर्दोषचक्रम्) निर्दोषो का समुदाय (अपि) भी (फचित्) कहाँ पर (याति) चला जाता है (न रिन्न) यह हम नहीं जानने (अपरम्पितम्) और तो क्या (अभिरुधम्) कह (सर्गस्पर्शस्मिन्) मनो गोचा करने वाले इस (धाम्नि) चैतन्यरूप तेजके (अनुभयम्) अनुभव क (उपयाते) प्राप्त होने पर (द्वितम्) द्वत (एव) ही (न) नहीं (भाति) प्रकाशमान रहता है ॥१॥

(अनाति)

आत्मस्वभावपरभावभिन्न—

मापूर्णमाद्यन्तमिमुक्तमेक ।

विलीनसकल्पविकल्पजाल—

प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(परभावमिदम्) परके भावों से भिन्न (आपूर्णम्) ध्यान में पूर्ण (आद्यं तमिमुक्त) आदि अत करके रहित (विलीनसकल्पजाल) सकल्पक समूहमें रहित (एक) एक रूप (आत्मस्वभावम्) आत्मस्वभावको (प्रकाशयन्) प्रकाश करता हुआ (शुद्धनय) शुद्धनय (अभ्युदेति) उद्भय को प्राप्त होता है ॥१०॥

न हि विदधति वद्धस्पृष्टभावादयोऽमी—
 स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्रप्रतिष्ठां ।
 अनुभवतु तमेव द्योतमान समता—
 जगदपगतमोही भूय सम्यक् स्वभाव ॥११॥

अत्रार्थ—(अमी) ये (वद्धस्पृष्टभावादयः) वधे हुए लुपे हुए आदि भाव (स्फुटम् उपरि तरन्तः) स्पष्ट रूप में ऊपर तरते हुए (अपि) भी (एत्य) आकर (यत्रप्रतिष्ठा) जो स्थिति को (हि) निश्चयसे (न) नहीं (विदधति) करते हैं (अपगतमोहीभूय) मोहरहित होकर (सम्यक्स्वभाव) समीचीन स्वभाव वाले (समताजगत्) चारों तरफ से जगत् को (उद्यातमानम्) प्रकाशित करने वाले (तमेव) उमही चैतन्य आत्माका (अनुभवतु) अनुभव करो ॥११॥

(शार्दूलवित्राडित)

भूत भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्ध सुधीर्य-
 द्यन्तःकिलकोऽप्यहो कलयति व्यादृत्य मोह हटात् ।
 आत्मात्मानुभवेकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्तेध्रुव ।
 नित्य कर्मकलकपकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः

अ उपाय—(यदिक अपि) कोइ भा (सुधी) बुद्धिमान
 (मूत) हो चुक (भात) हो रहे (अमृतम्) आगे होन वाल (उघ)
 घघको (रममा गत्र) शीघ्रहों (निर्मिघो) दिन्न भिन्न करर
 (हृष्टात्) हृष्टसे (मोह) मोहको (न्याहृत्य) नाश करके (रिल)
 लिख्ययम् (अन्त) अंतरगत (कलियति) लान होना है (अहो)
 आश्चर्य है (आत्मानुभूतैकगम्यमहिमा) अपने अनुभव से ही
 जानने योग्य है महिमा निम्नरी (व्यक्त) स्पष्ट (नित्यरम-
 कलरूपरुचिरल) हमेशा समरूपरुचि से रहित
 (शान्त) हमेशा (अयम्) यह (आत्मानुभूत) आत्मानुभवसे
 (स्वयं देव आस्ते) स्वयं देव है ॥१२॥

(असततिलका)

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या—

ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्या ।

आत्मानमात्मनि निवेश्य तु निःप्रकम्प—

मेकोऽस्ति नित्यमवबोधधनः समन्तात् ॥१३॥

अ उपाय—(शुद्धनयात्मिका) शुद्धनयदा है स्वरूप निसका
 (इति) ऐसी (या) जो (आत्मानुभूति) आत्मानुभूति है (किल)

निश्चयसे (एव) ही (इय) यहो (ज्ञानानुभूति) ज्ञानानुभूति है (इति बुद्धयो) ऐसी बुद्धिसे (आत्मनि) अपनेमें (सुनि प्रकम्पम्) अतिनिश्चल (आत्मानम्) अपने आत्मासे (निर्गम्य) लगाकर (ममन्तात्) चारों तरफसे (नित्य) हमेशा (अग्रवोधन) ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसा (एक आत्मा अस्ति) एक आत्मा ही है ॥१३॥

(पृष्ठी)

अखण्डितमनाकुल जलदनन्तमन्तर्वहिः
महःपरममस्तु न सहजमुद्विलास सदा
चिदुच्छलननिर्भर सकलकालमालम्बते
यदेकरसमुल्लसमुल्लवणखिल्यलीलायित ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अखण्डितम्) सन्दरहित (अनाकुलम्) आकुलता रहित (अन्तर्वहि) अन्तरग और बहिरग (जलत्) प्रवाशमान् (सहजम्) स्वभाव से (उद्विलास) उत्पन्न हुआ अर्थात् प्रगट हो चुकी है स्वाभाविक क्रीड़ा जिसमें ऐसा (अनन्त) जिसका अन्त नहीं ऐसा (परमम् महः) सर्व श्रेष्ठ तेज (सदा) हमेशा (न) हमारे (अस्तु) हो (यत्) जो (चिदुच्छलननिर्भर) चैतन्य के प्रकाश से व्याप्य (लक्षण-खिल्यलीलायित) लक्षण की डली की लीला के समान (एकर-

रममुल्लसत) एक रस को (मरुनकाल) सर्वदा (आलम्बन)
आलम्बन करता है ॥१४॥

(अनुष्टुप)

एष ज्ञानघनोनित्यमात्मासिद्धमभीप्सुभिः ।

साध्यसाधकभावेन द्विधैकः ममुपास्यताम् ॥१५॥

अथार्थ—(मिद्धिम् अभीप्सुभिः) आत्ममिद्धि को चाहने
वाले (नित्यम्) हमेशा (ज्ञानघन) ज्ञानघन रूप से (एष) ३म
(आत्मा) आत्मा को (साध्यसाधकभावेन) साध्य साधक
भाव से (द्विध) दो भेद रूप हात हुए भी (एक ममुपास्यताम्)
एक रूप से उपासना कर ॥१५॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम् ।

मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः ॥१६॥

अन्वयाथ—(आत्मा) आत्मा (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वात्)
दर्शन ज्ञान चारित्र तीन रूप होने से (मेचक) मेचक (च) और
भेदरूप (स्वय एकत्वत) स्वय एरूपनेमे (अमेचक अपि)
अभेदरूप भा (अस्ति) है और (प्रमाणत ममम्) प्रमाणरूप से
समान है ॥१६॥

(अनुष्टुप)

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिःपरिणतत्वतः ।

एतोऽपित्रिस्वभावत्वाद्व्यग्रहारेणमेचकः ॥१७॥

अत्रयार्थ—निश्चयनय से (दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः
परिणतत्वरत) आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भेदरूप परिणत
होता हुआ (एक अपि) एक ही है और (व्यग्रहमेव) व्यग्रह
से (त्रिभ्यभावत्वात्) तान् स्वभाव वाला होता हुआ (मचर)
मेचर भेदरूप है ॥१७॥

(अनुष्टुप)

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वं ज्योतिर्पैककः ।

सर्वं भायान्तरध्वंसि स्वभावत्वादमेचकः ॥१८॥

अत्रयार्थ—(परमार्थेनतु) निश्चयनयनतो (व्यक्त ज्ञातृत्वं
ज्योतिर्पैकक) प्रगट ज्ञाना ज्योति स्वरूप एक ही है (सर्व-
भायान्तरध्वंसि स्वभावत्वात्) सर्ववर्थाया तत्ता का नाश करने
वाले स्वभाव से (अमेचक) अमेचक ही है ॥१८॥

(अनुष्टुप)

आत्मनश्चिन्तयैवाल मेचकामेचकृतयोः ।

दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा ॥१९॥

अत्रयार्थ—(मचरामचरतयोः) मचर यानि भेदरूप
और अमेचक यानि अमेचक इन दोनों का (चित्तया) चि ता
करना (सत्ताम्) कर्ष (अस्ति) है (दर्शनज्ञानचारित्रैः) दर्शन
ज्ञान चारित्रसे (एव) ही (आत्मन) आत्माकी (माध्यमिद्वि)
माधनामे ही सिद्धि होता है (अन्यथा च न) अन्यथा नहीं हो
सकती ।

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया—

अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम् ।

मततमनुभवामोऽनन्त चैतन्यचिन्हम्—

नखलु नखलु यस्मादन्यथासाध्यसिद्धिः ॥२०॥

अन्यार्थ—(एकताया) एकासे (अपतितम्) पतित नहीं होने वाले (कथमपि) किंतु (समुपात्तत्रित्वम्) व्यवहार नयसे प्राप्त किया है तीनपने को जिसन (अपि) ऐसे (अच्छम्) स्वच्छ (उद्गच्छत्) प्रकाशमान् (अनन्तचैतन्यचिन्हम्) अनन्त चैतन्यचिह्नवाले (इदं) इस (आत्मज्योति) आत्म तेज का हम (मतत) निरंतर (अनुभवाम) अनुभव करते हैं (यस्मात्) क्योंकि (साध्यसिद्धि) साध्य की सिद्धि (अन्यथा) दूसरी तरह से (नखलु नखलु) निश्चयस नहीं होती, नहीं होती ॥२०॥

(मालिनी)

कथमपिहि लभन्ते भेदविज्ञानमूला—

मचलितमनुभूति ये स्वतो वान्यतो वा ।

प्रतिफलनिनिमग्नानन्तभावस्वभावैः—

मुकुरवदविकारा सततस्युस्त एव ॥२१॥

अवयवार्थ—(ये) जो (प्रतिफलननिमग्नानतमात्रस्वभावे)
 प्रतिनिमग्नस्वप्ने निमग्न अनत मात्रात्मक स्वभावों के द्वारा
 (स्वत) खुद अथवा (अन्यत) दूसरे के द्वारा (भेदविज्ञान-
 मूलाम्) भेदविज्ञानप्रधान (अनुभूति) अनुभूतियों (हि) निश्चयमे
 (कथमपि) किसी भी प्रकार (अचलम्) अचलरूप से (लभन्ते)
 प्राप्त करते हैं । (ति) वे (एव) ही (मतत) निरंतर (मुकुरयत)
 वर्पण के समान (अविकारा) निर्विकार (स्यु) होते हैं ॥१॥

(मालिना)

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढ ।
 रसयतु रसिकाना रोचन ज्ञानमुद्यत ॥
 इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः ।
 किल कलयति काले कापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२

अन्वयार्थ—(इदानीं) इस समय (जगत्) जगत् (आजन्म-
 लीढ) जन्मसे लगे हुए (मोहम्) मोहको (त्यजतु) छोड़
 (रसिकाना) रसिक जनों के (रोचन) रुचिपर (मुद्यत) उदीय
 मान् (ज्ञान) ज्ञान (रसयतु) आस्वादन करें (इह आत्मा)
 यह आत्मा ससारमें (अनात्मना) अनात्माके (साकम्) साथ
 (कथमपि) किसी भी तरह से (एक) एक (न) नहीं हो सकता
 (किल) किन्तु (कापि) किसी भा (काले) समय (तादात्म्य-

वृत्तिम्) निवर्त्तयताको (स्थल्यति) प्राप्त करता है ॥२२॥

(मालिनी)

अथि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली स—

अनुभवभवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम् ॥

पृथगथविलसत स्व समालोक्य येन ।

त्यजति भ्रमिति मूर्त्या साकमेकत्वमोह ॥२३॥

अ-थयाथ— (अथि) हे आत्मन (अथमपि) किसी भी प्रकार
स (व्यवहार नय स) (मृत्वा) मरकर भी (तत्त्वकौतूहली) मरने
का है कौतूहल यानि तत्त्व का वि त्वन करने वाला (मुहूर्तम्)
क्षण भर (भवभूत पार्श्ववर्ती) शरीर के पास मरहता हुआ (सन्)
और (पृथगथविलसत) अलग छोड़ा करने वाले (स्व)
अपनेको (समालोक्य) देखकर (अनुभव) अनुभवकर (येन)
जिससे (मूर्त्या) शरीर के (मांसम्) साथ (एकत्वमाह)
एकपन के मोह को (भ्रमिति) गीघ ही (त्यजति) छोड़
सके ॥२३॥

(शार्दूल विकीटिन)

कान्त्यैव स्नपयन्ति ये दशदिशो धाम्नानिरु धतिये
धामोद्दाममहस्विना जनमनोमुष्णन्तिरूपेण ये ।

दिव्येन धनिना मुख श्रवणयोः साक्षात्क्षरन्तोऽमृतम्
बन्ध्यास्तेऽष्टमहसलक्षणधरा स्तीर्येश्वराः सूरयः २४

अथ वयार्थ—(ये) जो (कात्या) शरीरि काति से (एव)
ही (दशदिश) दशा निशाआ को (स्नपयन्ति) निर्मन करत हैं
(स्नान कराने हैं) (ये) जो अपने (धाम्ना) तेन से (महसिना)
महनपुरुषा के तेन को (उदामधाम्) अपने तन से (निष्पद्यन्ति)
नाचा कर देते हैं। (ये) जो [स्पृण] रूपम [ननमन] मनुष्याक
मनछा [स्पृणन्ति] आकर्षित करते हैं। [ये] जो [दिव्येन धनिना]
मनोहर निष्ठयानिम (मानात्) माहात [श्रवणयो] शाना का
[सूरय] सुगमारी [अमृतम्] अमृतको [क्षरन्त] कराते हैं [ते]
व (अष्टमहसलक्षणधरा) एक हजार आठ लक्षणों को धारण
करने वाले (नीर्येश्वरा) तार्येश्वर [सूरय] आचार्य [बन्ध्या]
बधना करने योग्य हैं ॥२४॥

(आर्या)

प्राकारकयलिता वरमुपवन राजीनिगीर्ण भूमितल
पिवतीव हि नगरमिद परिखा उलयेन पाताल ॥२५॥

अथ वयार्थ—[प्राकारकयलितावरम्] परकोटमे प्रम लिया
है आकाशको निसने [उपवनरानी] बागरी पत्ति [निगीर्ण
भूमितल] निगला है भूमिनन को निसने ऐमा उँचा [इदनगर]
यदनगर [हि] निश्चय से [परिखा उलयेन पाताल] राईमडलमे

पातालको [इर्वापति] ही मानो पी रहा है ॥२५॥

(आर्या)

नित्यमविकारसुस्थित, सर्वा गमपूर्वसहजलावण्य
अक्षोभमिव समुद्र जिनेन्द्ररूप पर जयति ॥२६॥

अन्यार्थ—(नित्यमविकारसुस्थितसर्वागम्) हमेशा
विचाररहित समीचीन रूपसे स्थित है सर्वाङ्गजिसका (अपूर्वसहज-
लावण्य) अपूर्व व्याभाविक है सौन्दर्य जिसका (पर जिनेन्द्ररूप)
श्रेष्ठ जिनेन्द्रदेव का रूप (अक्षोभम्) लुब्ध नहीं होने वाले
(समुद्र इव) समुद्रके समान (जयति) जयमान रहे ॥२६॥

॥ अथ निश्चय व्यवहाररूप स्तुति काव्य ॥

(शार्दूलविम्बित)

एकत्व व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनो निश्चय
न्नुःस्तोत्र व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न
तत्तत्त्वतः । स्तोत्रनिश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव
सैव भवेन्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरवलादेकत्वमात्मांग-
योः ॥२७॥

अन्यार्थ—(कायात्मन व्यवहारत) काय और आत्मा
के व्यवहारनय से (एकत्व) एकपणा है (निश्चयात्) निश्चयनय
से (तु) तो (न) नहीं है (तु) और (वपुषः, स्तोत्र) शरीरका स्तोत्र

(व्यग्रहारत) व्यग्रहारनय से होता है (तत्त्वगत) वह स्तोत्र निश्चयनय से शरीर की (स्तुत्या न) स्तुति से नहीं होता (स्तोत्र निश्चयतश्चित भवति) स्तोत्रनिश्चयनयसे उस चैतन्य का होता है (एवं स चित् स्तुत्याएव) इस तरह वह चैतन्य ही स्तुति करने योग्य हो सकता है (अतः तीर्थंरु म्त्वन उत्तरयत्नात्) इमान्ये तीर्थंरुभगवान् के स्तवन के बल से (आत्मागयो एक एव) आत्मा और शरीर में एकपना नहीं हो सकता ॥२७॥
(मालिनी)

इति परिचिततत्त्वैरात्मकार्यैकताया—

नयविभजन युक्त्यात्यतमुच्छादिताया ।

अवतरति न बोधो बोधमेवाद्यकस्य—

स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव ॥ २८ ॥

अर्थ—(इति परिचिततत्त्वै) इस प्रकार जान लिया है कि तत्त्वको निहाने ऐसे सम्यग्ज्ञानियों के द्वारा (नयविभजन युक्त्या) नय के विभागरूप युक्ति से अर्थात् निश्चयनय से (आत्मकार्यैकताया) आत्मा और शरीर की एकता को (अत्यत) सर्वथा (उच्छादिताया) उड़ा देने पर (अद्यएव) इस समय ही (बोध) ज्ञान (कस्य) जिस ज्ञानी पुरुष के (बोधम्) आत्मज्ञान को (न) नहीं (अवतरति) उत्पन्न करता है (अपितु) किंतु (सर्वस्य) सभीके उत्पन्न करता है

(अतः) इसलिये (स्वरसरमसकृष्ट प्रस्फुरन् आत्मा एक एव)
अपने आत्मीय रस के वेग से खींचा हुआ अत्यन्त प्रकाशमान
आत्मा एक ही (अस्ति) है ॥२८॥

(मालिनी)

अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगा—

दनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः ॥

भटिति सकल भावैरन्यदीयैर्विमुक्ता—

स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

अत्रार्थ—(अपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः) परभावा के
छोड़ने की दृष्टांत दृष्टि (यावत्) अतएव (अत्यन्तवेगात्) बहुत
शीघ्रतासे (वृत्ति) वृत्ति अर्थात् स्थिरता को (अनयम्) यथास्यात्तथा
अर्थात् यथार्थ रूपसे जैसे बने वैसे (न अवतरति) नहीं प्राप्त
करती है (तावत्) ततःक (भटिति) शीघ्र ही (अन्यदीयै)
दूसरे (सकलभावे) सम्पूर्ण भावा में (विमुक्ता) रहित (इयम्
अनुभूति) यह अनुभूति अर्थात् स्वानुभव (स्वय आविर्बभूव)
रखत प्रगट हो जाता है ॥२९॥

(स्वागता)

सर्वतः स्वरसनिर्भरभाव, चेतये स्वयमहं स्वमि
हैक । नास्ति नास्तिमम कश्चन मोहः, शुद्धचिद्-
घन महोनिधि रस्मि ॥३०॥

अवयवार्थ—(मर्त) सय तरफम (स्वरसनिर्मरमान)
 आत्मीरसमे परिपूर्ण हैं भाव जिसके मेमे (म्य) अपनी आत्मा
 को (इह) इस लोक म (अह) मैं (स्वय) स्वत (एक)
 एक अर्थात् अद्वितीय (चेतये) जानता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ
 (मम) मेरे अर्थात् शुद्ध आत्मा के (कश्चन) कोई भी
 (मोहो नास्ति) मोह नहीं है (नास्ति) नहीं है (अहतु) मैं तो
 (शुद्धचिद्ब्रह्मनमहोनिधि) शुद्ध चैतन्यधन तेन का रचना
 (अस्मि) हूँ ॥३८॥

(मालिनी)

इतिसति सह सर्वैरन्यभाजैर्विवेके—

स्वयमयमुपयोगो विभ्रदात्मानमेक ।

प्रकटितपरमार्थेर्दर्शनज्ञानवृत्तैः—

कृतपरिणति रात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३९॥

अवयवार्थ—(इति) इस प्रकार (सर्वैः) समस्त (अन्यभाजैः)
 अन्य भावा अर्थात् कर्मापाधि जनित समस्त विकार भावों के
 (सह) साथ (विभेदे) भेदके (सति) होने पर (अयम्) यह
 (उपयोग) चैतन्यका परिष्कृत (म्य) स्वत (एक) एक
 अर्थात् असहाय अद्वितीय (आत्मान) आत्मा को (प्रिभृत)
 धारण करता हुआ (प्रकटितपरमार्थे) प्रगट हो गया है श्रेष्ठ
 स्वरूप निहा का मेमे (दर्शनज्ञानवृत्तैः) दर्शन ज्ञान और चारित्र

से (कृतपरिणति) किया है परिणमनको जिसने (एव भूत,
 ऐसा (स उपयोग) वह उपयोग (आत्मारामे) आत्माराम
 आराम अर्थात् विश्राम स्थान म (एव) ही (प्रवृत्त) प्रवे-
 करता है ॥३१॥ (यमततिलका)

मज्जन्तुनिर्भरमपी सममेव लोकः—

आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः ।

आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणी भरेण—

प्रोन्मग्न एव भगवानवबोधसिन्धुः ॥३२॥

अ नयार्थ—(अमी) ये (समस्त) सभी (लोक) जीव
 (आलोक) लोकपर्यंत त अधवा (आलोक्यथास्यात्तथा) सर्वथा
 स्पष्ट रूप जैसे बने तैसे (उच्छलति) उछलने वाले अर्थात् तरंगित
 (शान्तरसे) शांतिरूपरसम (सममेव) एकसाथही (निर्भर) अत्यंत
 रूपसे (मज्जन्तु) डूब अर्थात् गोते लगावें (विभ्रमतिरस्करिणी)
 मोहरूपी आवरण को (भरेण) आत्मिक शक्ति से (आप्लाव्य)
 दूरकर (अवबोधसिन्धु) ज्ञानसासमुद्र (एव) यह (भगवान्)
 आत्मा (प्रो मग्न) प्रगट हुआ है ॥३२॥

**नृत्य कुतूहल तत्त्वको, मरियवि देखो धाय
 निजानद रसमें छको, आन सबै छिटकाय**

॥ इति पूर्ववर्गाधिनार समाप्तम् ॥

॥॥ अथ जीवानां प्राविकार लिख्यते ॥

(शास्त्रैर्लविवीक्षित)

जीवा जीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्यावयत्पार्षदा-
नाससारनिबद्धबन्धनविधिध्वसाद्विशुद्ध स्फुटत्-
आत्माराममनन्तधाम महसाध्यक्षेण नित्योदित
धीरोदात्तमनाकुलविलसति ज्ञान मनोहादयत् ॥१॥

अन्वयार्थ—(जीवा जीवविवेकपुष्कलदृशा) जीव और
अजीव के विवेक से परिपुष्ट दृष्टि से (पार्षदान्) सभासदा
अर्थात् भग्न जीवों को (प्रत्यावयत्) समझाता हुआ (आमसार
निबद्धबन्धनविधिध्वसात्) अनादि ससार से बंधे हुए बंधन के
विधानके विनाश से (विशुद्ध) अतिनिर्मल (स्फुटत्) स्फुरायमान
(आत्मारामम्) आत्मा ही है कीन्हा स्थान अर्थान् उपयन जिसका
(अनन्तधाम महसा) अनन्तधाम तेजस्व (अध्यक्षेण) प्रत्यक्षसे
(नित्योदित) सर्वदा उदित रहने वाला (धीरोदात्त) अविजित
विशाल (अनाकुलम्) आकुलता से रहित (मन) मनको
(हादयत्) आनन्दित करता हुआ (ज्ञान विलसति) ज्ञान
विलास करता है अर्थात् शोभित होता है ॥१॥

(मालिनी)

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन—

स्वयमपि निभूतः सन् पश्य परमासमेक ॥

हृदयमरमि पु सः पुद्गलाद्भिन्नधाम्ना—
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२॥

अ-वयवार्थ—(मिरम) दूर रहो (अपरेण) दूसरे (अकार्य
कोलाहलेन) निःप्रयोजन वार्तावाप से (किं) क्या प्रयोजन
(स्वय अपि) खुद भी (निष्ठ) निश्चल (मन्) होना हुआ
(त्यम् एषं) तू एह (पण्यमान) छह माह (पश्य) देख (पुद्गलात्)
पुद्गलस (भिन्नधाम्ना) पथक है तब जिसका अथवा स्थान
जिसका ऐसे (पु स) पुद्गल आत्मा के (हृदयमरमि) मनरूपी
कालाशमें (ननु) निश्चयसे (किं) क्या तो (अनुपलब्धि) अप्राप्ति
(रु ध) और क्या (उपलब्धि भाति) प्राप्त मालूम पड़ती है ॥२॥
(अनुष्टुप)

चिच्छक्तित्वात्सर्वस्वसारो जीव इयानयं ।

अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिकायमी ॥३॥

अ-वयवार्थ—(चिच्छक्तित्वात्सर्वस्वसार) चेतना रूप
शक्ति से भरा हुआ है सर्वस्वसार जिसका ऐसा (अर्थ) यह
(जीव) आत्मा (इयान्) इतना अर्थात् चैत यरूप (अस्ति) है
(अत) इससे (अतिरिक्ता) प्रथक (अमी) ये रागादि (सर्वेपि)
सभी (भावाः) परिणाम (पौद्गलिका) पुद्गल सम्बन्धी
(मति) है ॥३॥

(मालिनी)

सकलमपिविहायाह्वाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्व च चिच्छक्तिमात्र ।
इममुपरि चरन्त चारु विश्वस्य साक्षात्—
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्त ॥४॥

अवयार्थ—(चिच्छक्तिरिक्त) चैतन्य शक्ति से शून्य
(सकलमपि) सभी भावों को (अह्वाय) शीघ्र (विहाय) छोड़कर
(चिच्छक्तिमात्रं) चैतन्य शक्ति प्रमाण (स्वच) अपनी आत्मा
को (स्फुटतरम्) अत्यन्त स्फुट रूप से (अवगाह्य) आलोचनर
(विश्वस्य) समस्त पन्था के (उपरि) ऊपर (चारुचरन्तं)
सुन्दरता से चलने वाले (अनन्त) अविनश्यर (इम) इम
(आत्मानं) आत्मा को (आत्मनि) अपने ॥ (परमात्मा) लक्ष्मण
आत्मा अर्थात् सन्मयगृष्टि (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूप से (कलयतु)
प्राप्त करे ॥४॥

वर्णाद्या वा रागमोहादयोवाभिन्नाभावाः सर्व
एवास्य पु सः ॥ तेनैवान्तस्तत्पतः पश्यतोऽमी
नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेक पर स्यात् ॥५॥

अवयार्थ—(वर्णाद्या) वर्णादि(रा)अथवा(रागमोहादयः)
राग द्वेष मोह आदि (मनो) सभी (माना) मान (अस्य) इस

(पु स) आत्मा म (मिन्ना) अलग (एत्र) हो (मति) है (तेन)
 तिस कारण से (एत्र) ही (तत्पत) वस्तु स्वयम् के (अत)
 अतरंग वो (पश्यत्) देखने वाले (अस्य) इस (पु स) आत्मा
 क (अमी) ये वर्णादि और रागादि भाव (ना) नहीं (दृष्टा)
 देखे (स्युः) जाते हैं (पर) भिन्ने (एक) एक आत्म द्रव्य ही
 (दृष्ट) देखा (स्यात्) जाता है ॥ ५ ॥

(उपजाति)

निर्वर्त्यते येन यदत्र किञ्चित्देवतत्स्यान्न कथच
 नान्यत् । रुग्मेण निर्वृत्तमिहासिकोश पश्यन्ति
 रुग्म न कथचनार्सि ॥६॥

अ-वयाव—(अत्र) इस लोक म (येन) जिस पदार्थ से
 (यत्) जो (किञ्चित्) कुछ भी (निर्वर्त्यते) रचा जाता है (तत्)
 यह (तदेव) वही (स्यात्) है (कथचन) किसी भी प्रकार से
 (अन्यत् न) दूसरा नहीं (इह रुग्मेण निर्वृत्त) इस लोक म स्वयं
 से रची गई (असिकोश) तलवार की ध्यान को तत्पक्ष लोग
 (रुग्मपश्यन्ति) सोना देखते हैं (असि कथचन न) तलवार को
 किसी भी प्रकार से नहीं देखने ॥६॥

(उपजाति)

वर्णादि सामग्यमिदं विदतु

निर्माणमे कस्य हि पुद्गलस्य ।

ततोऽस्त्वद पुद्गल एव नात्मा

यतः सविज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥७॥

अवयवार्थ—(इदं वर्णादिमामग्यम्) यह वर्णादि सामग्री (हि) निरवयवे (एकस्य पुद्गलस्य निर्माणम् विदत्तु) एक पुद्गल की रचना जानो (ततः इदं पुद्गल एव अस्तु) निम्न कारण से यह वर्णादि सामग्री पुद्गल ही है (आत्मा न) आत्मा नहीं (यतः सविज्ञानघन) क्योंकि यह आत्मा विज्ञान स्वरूप है (ततः अन्य) इसलिये पुद्गल ही भिन्न (अस्ति) है ॥७॥

(अनुष्टुप)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।

जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८॥

अवयवार्थ—(घृतकुम्भाभिधानेऽपि) घी का घड़ा कहने पर भी (चेत् कुम्भो घृतमयो न) यदि घड़ा घाँवा नहीं है तो (वर्णादिमज्जीव जल्पनेऽपि) वर्णादिमान जीव कहने पर भी (जीव तन्मय न) जीव वर्णादिमान नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप)

अनाद्यनन्तमचल स्वसवेद्यमिदं स्फुटम् ।

जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥९॥

अवयवार्थ—(जीव) जीव (तु) तो (स्वयं) गुण (चैतन्य)

ततोऽस्त्वद पुद्गल एव नात्मा

यतः सविज्ञानधनस्ततोऽन्यः ॥७॥

अवयार्थ—(इद वर्णादिसामग्र्यम्) यह वर्णादि सामग्री (हि) निरवयवे (एकस्यपुद्गलस्यनिर्माणम् त्रिदन्तु) एक पुद्गल की रचना जानो (तत इद पुद्गल एव अस्तु) तिम कारण से यह वर्णादि सामग्री पुद्गल ही है (आत्मा न) आत्मा नहीं (यत मविज्ञानधन) क्योंकि वह आत्मा विज्ञान स्वरूप है (तत अन्य) इसलिये पुद्गल से भिन्न (अस्ति) है ॥७॥

(अनुष्टुप)

घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत् ।

जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥८॥

अवयार्थ—(घृतकुम्भाभिधानेऽपि) घी का घड़ा कहने पर भी (चेत् कुम्भो घृतमयो न) यदि घड़ा घी का नहीं है तो (वर्णादिमज्जीव जल्पनेऽपि) वर्णादिमान जीव कहने पर भी (जीव तन्मयः न) जीव वर्णादिमान नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप)

अनाद्यनन्तमचल स्वसवेद्यमिद स्फुटम् ।

जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥९॥

अवयार्थ—(जीव) जीव (तु) तो (स्वयं) खुद (चैतन्य)

चैतन्य है (अनाद्यनन्त) आदि और अत से रहित (अचलो) अचलता से रहित (स्वसंगेध) स्वतः जानने योग्य (इदं उच्यते) यह अतिशयरूप (स्फुटम्) स्फुरायमान (चक्रचक्रायते) अतिशय रूपसे प्रकाशमान है ॥६॥

(शार्दूलजिक्रीडित)

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो
नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्यति व्यापि वा
व्यक्तव्यजितजीवतत्त्वमचल चैतन्यमालम्ब्यतां

अथयार्थ— (यत अजीव) जिस कारण से अजीव (वर्णाद्यैः सहित) वर्णादि सहित (तथा विरहिता) तथा वर्णादि से रहित (द्वेधास्ति) दो प्रकार का है (ततः अमूर्तत्व) तिस कारण से अमूर्तत्वनेको (उपास्य) प्राप्त कर (जगज्जीवस्य तत्त्वं न पश्यति) ससारी जीव वस्तु के स्वरूप को नहीं देखते हैं (इति आलोच्य) ऐसा विचार कर (विवेचकैः) शानी पुन्या ने परीक्षा कर (अव्याप्ति न) अव्याप्ति दोष से दूषित नहीं (वा) अथवा (अतिव्याप्ति न) अतिव्याप्ति दोषसे दूषित नहीं है (इति समुचित) इस प्रकार बहुत ठीक (व्यक्त) कहा (अतः अचलं व्यजितजीवतत्त्व) इसलिये निश्चल स्पष्ट रूप लावतस्वरूप को (चैतन्य) चैतन्यका (आलम्ब्यता) आलम्बन करना चाहिए ॥१०॥

(वसवतिलका)

जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्न —

ज्ञानीजनोऽनुभवति स्वयमुल्लसन्त ॥

अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽय —

मोहस्तु तत्कथमहोवतनानदीति ॥११॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी जन) ज्ञानवान् मनुष्य (लक्षणत विभिन्न) लक्षण से अत्यन्त भिन्न (जीवात्) जीव द्रव्य से (स्वय उल्लसन्त) स्वतः प्रकाशमान (अजीव इति स्वय अनुभवति) अजीवद्रव्य को हम प्रकार सुद्ध अनुभव करता है (तु) किन्तु (अज्ञानिनः) अज्ञानी पुरुष (निरवधि प्रविजृम्भित) 'सीमा रहित वैलता हुआ (अयम् मोह) यह मोह (कथं) क्या (नानदीति) बार बार नाचता है (तत् अहोवत) यह हमने पड़ा अचम्भा अर्थात् खेद है ॥११॥

(वसवतिलका)

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेकनाटये —

वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः ।

रागादिपुद्गलविकारविरुद्धशुद्ध —

चैतन्यधातुमयमूर्तिरयं च जीव ॥१२॥

अन्वयार्थ—(अस्मिन् अनादिनि) इस अनादि (महति

अविचेक नाट्ये) मद्धान् अविचेकरूपी नाटकम् (गर्णादिमान्) वर्णादि वाला (पुद्गलएव) पुद्गल ही (नटति) नाचता है (अथ न) दूसरा नहीं (च) और (अथ जीवः) यह जीव (गर्गादिपुद्गलरिफाररिरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः अस्ति रागादि पुद्गल के रिफारा से भिन्न निर्मल चैतन्य धातु रूप मूर्ति वाला है ॥ १० ॥

(मन्त्राक्राता)

इत्थ ज्ञान ऋकच कलना पाटन नाटयित्वा-

जीवा जीवोस्फुटविघटन नैव यावत्प्रयातः ॥

विश्व व्याप्यप्रसम्भविकशद्द्रव्यक्वचिन्मात्रशक्त्या-

ज्ञातृद्रव्य स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे ॥ १३ ॥

अथयार्थ—(इत्थ) इस प्रकार (जीवाजीवो) जीव और अजीव दोनों (ज्ञानऋकचकलनापाटनं) ज्ञानरूपी करीत के उपयोग से भिन्नता को (नाटयित्वा) दिखाकर (नचा कर) (यावत्) जब तक (स्फुट विघटन) स्पष्ट प्रथक रित्कृत भेद को (नैव) नहीं (प्रयात) प्राप्त होते हैं (तावत्) तब तक (प्रसम्भविकशत्) वेग से प्रगट होता हुआ (ज्ञातृद्रव्यं) जीव द्रव्य (व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या) प्रगट चैतन्य शक्ति से (विश्व व्याप्य) जगत् को व्याप्त कर (स्वयमतिरसात्) खुद अति वेग से (उच्चैश्चकाशे) ऊपर शोभित होता है ॥ १३ ॥

॥३॥ कर्तृकर्माधिकारः लिख्यते ॥

(मदाज्ञानता)

एकः कर्ता चिदहमिह मे कर्म कोपादयोऽमी
इत्यज्ञानाशमयदभितः कर्तृकर्मप्रवृत्ति
ज्ञानज्योतिः स्फुरति परमोदात्तमत्यन्तधीर
साक्षात्कुर्वन्निरुपधि पृथग्द्रव्यनिर्भासिविश्व ॥१॥

अथवाध—(इह एक चित् अहं कर्ता अस्मि) इस ससार
में एक चैतन्य रूप में कर्ता हूँ (अमी कोपादय मे कर्म) ये
क्रोधादि भाव मेरे कर्म हैं (इति अज्ञाना कर्तृकर्मप्रवृत्ति)
इस प्रकार अज्ञानियों की कर्ता कर्म की प्रवृत्ति को (अभित) सब
तरफ से (शमयत्) नाश करता हुआ (परमोदात्त अत्यन्तधीर)
अति उत्कृष्ट अत्यन्त धीर (निरुपधिपृथग्द्रव्यनिर्भासि)
उपाधि रहित अलग अलग द्रव्या को प्रकाशित करने वाला
(ज्ञानज्योति विश्व साक्षात् कुर्वत् स्फुरति) ज्ञान रूपी
प्रकाश समस्त लोक को प्रत्यक्ष करता हुआ विकास को प्राप्त
होता है ॥१॥

(मन्त्राज्ञानता)

परपरिणतिमुज्झत् खडयद्देववादा—
निदमुदितमखडज्ञातमुच्चण्डमुच्चैः ॥

ननु कथमवकाशः कर्तृकर्मप्रवृत्ते—

रिह भवति कथं वा पौद्गलःकर्मबन्धः ॥२॥

अथयार्थ—(परपरिणतिं उज्जम्) परकी परणति को छोड़वा हुआ (मेदमादान्म्वडयत्) मति आदि मेद यानों को गहिन करता हुआ (उच्चण्डम् अखडम् उच्चं . .) अति प्रचण्ड अम्वड और अनि उन्नत (इदं ज्ञान उदित) यह ज्ञान प्रगट हुआ है (ननु) निरचय मे (इह कर्तृकर्म प्रवृत्ते) इस मसारमें कता और कर्म की प्रवृत्ति को (अप्रकाश रूपस्यात्) अवकाश कैसे मिल सकता है (वा पौद्गलः कर्मबन्धः कथमवति) और पुद्गल मध्यधी कर्म बंध कैसे हो सकता है (अपितु न) अर्थान् नहीं हो सकता ।

(शादूलनिग्रीहित)

इत्येग्निरचम्य सप्रति परद्रव्यान्निवृत्तिपरं
स्वविज्ञानधनस्वभावाभयादास्तिधुमानं पर ।

अज्ञानोत्थितकर्तृकर्मकलनात्कलेशान्निवृत्तःस्वयं
ज्ञानीभूत इतश्चास्ति जगतःसाक्षीपुराणःपमान् ।

अथयार्थ—(इत्येग्नः) इस प्रकार (सप्रतिपरद्रव्यान्) इस समय पर द्रव्य मे अत्यन्त (निवृत्ति) निवृत्ति को ज्वाह को (निरचम्य) रचकर (विज्ञानधनम्यभावं) विज्ञान धन ही है

स्वभाव जिसका (परम्) सिर्फ (अभ्यास) निर्भरतासे (स्व)
 अपनी (आस्तिधनुमान) आत्माको स्थिर करता हुआ (अज्ञानो-
 स्थितकर्तृकर्मफलनाश) अज्ञानसे पैदा हुए कर्ता कर्म रूप
 (क्लेशान्मृत) क्लेश स दूर होता हुआ (स्वयं ज्ञानीभूत)
 शुद्ध ज्ञान रूप हुआ (जगत मार्त्तपुराण पुमान् इत चकास्ति)
 जगतका प्रत्यक्ष करने वाला, अनादि, आत्मा इस तरह मे
 प्रकाशित हो रहा है ॥३॥

(शार्ङ्गसंनिधीकृत)

व्याप्यव्यापकता तदात्मनिभवेन्नैवातदात्मन्यपि
 व्याप्य व्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः
 इत्युद्दामविवेकधम्मरमहो भारेणभिन्दस्तमो
 ज्ञानीभूय तदा स एव लसितःकर्तृत्वशून्यःपुमान् ॥

अथार्थ—(व्याप्य व्यापकता तदात्मनि एव भवेत्)
 व्याप्य और व्यापकता रूप सत्रध व्याप्य व्यापक रूप वस्तु में
 ही होता है व्याप्य व्यापक शून्य वस्तु में तो नहीं (व्याप्य
 व्यापक भावसंभवे अमृते कर्तृकर्मस्थितिः) व्याप्य व्यापकभाव
 के बिना कर्ता कर्म की स्थिति (का) क्या हो सकती है, अर्थात्
 कुछ भी नहीं, (इति उद्दामविवेकधम्मर अहो भारेण
 तम मि द) इस तरह के विशाल ज्ञान रूप समस्त पदार्थों को
 विषय करने वाले तेजसे भारसे अज्ञानाधकार को छिन्नभिन्न

करता हुआ (ज्ञानी भूय नदा कर्तृत्वशून्य.) ज्ञानरूप कर्तापन
मे रहित (स एष. पुमान् लसित) वह यह आत्मा प्रकाशित
हुआ ॥४॥

(अन्वय)

ज्ञानी जानन्नपीमांस्त्रपरपरिणतिपुद्गलश्चाप्य जानन्
व्याप्तव्याप्यत्वमन्तःकर्त्तायितुमसहौनित्यमत्यतभेदात्
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भातितावन्न याव-
द्विज्ञानाच्चिश्चकारस्तिरुक्चवदयभेदमुत्पाद्यसद्यः

अन्वयार्थ—(ज्ञानी) विद्येजी (हमा) इस (स्त्रपरपरिणति)
अपनी और पर का परिणतिको (जानन्) जानता हुआ (अस्ति)
है (अपि च) और (पुद्गल) पुद्गल (स्त्रपरपरिणति) अपनी
और परकी परिणति को (अज्ञानन्) नहीं जानता है (यत्)
इसलिये (हमें) ये दोना (नित्य) हमेशा (अत्यन्तभेदात्)
अत्यन्त प्रथक होनेसे (व्याप्त व्याप्यत्वं) व्याप्य व्यापकता को
(अतः) अ तरगमें (कर्त्तायितुं) धारण करने में (असहौ) असमर्थ
है (अज्ञानात्) अज्ञानसे (अनया) जीव और पुद्गल के
(कर्तृकर्म भ्रममति) कर्ता कर्म की भ्रमात्मक बुद्धि (तावत्) तब
तक (भाति) मालूम पड़ती है (यावत्) जब तक (विज्ञानाच्चि)
विज्ञान उद्योति (अयं) यह आत्मा (उक्चवत्) करान के समान

(भेद) मे का (उत्पत्ति) उत्पत्ति (सुख न चक्षुः) शीघ्र प्रसूत
नया हाता ॥५॥

(आर्या) ५८

य परिणमति स कर्ता य परिणामो भवेत्तु तत्कर्म
या परिणति क्रिया मा त्रयमपिभिन्न न वस्तुतयाद्

अन्वयार्थ—(य परिणमति) ३। परिणमन कर्ता है (स कर्ता
भवेत्तु) वह कर्ता होता है (तु) और (य) ३। (परिणाम) परिणाम है
(तत्कर्म भवेत्तु) वह कर्म है (या) जो (परिणति) परिणति हाती है
(सा क्रिया) वह क्रिया है (वस्तुतया) यथाथ रूप स (त्रय अपि
भिन्न) तीनों भी भिन्न (न) नहीं है ॥६॥

(आर्या) ५९

एक परिणमति सदा परिणामो जायते मदैकस्य ।

एकस्य परिणति स्यादनेकमप्येकमेव यत ॥७॥

अन्वयार्थ—(मदा एक परिणमति) हमारा एक रूप परिणमन
कर्ता है (स. १) हमारा (एकस्य) एक का (परिणाम) परिणामन
(जायते) होता है (एकस्य) एक की (परिणति) परिणमन रूप क्रिया
(स्यात्) हाती है (यत) क्योंकि (अनन्य अपि) अनेक रूप परिणमन भा
(एक एव) एक ही रूप हा होने ॥७॥

(आर्या) ६०

नोभो परिणमत सलु परिणामो नोभयो प्रजायेत्
उभयान परिणति स्याद्यदनेकमनेकमेव मदा ॥८॥

अन्वयार्थ—(यत्) निश्चय से (उभौ) ने द्रव्य (न परिणामतः) एक रूप परिणामन नहा कन्त (उभयो) ने द्रव्य का (परिणाम) एक रूप पारणामन (न प्रनायेत्) नहीं होता है (उभयो) ने द्रव्या की (परिणति) परिणति रूप किया (न स्यात्) नहा होता (यत्) क्योंकि (अनेक) अनेक द्रव्य (सदा अनेकमेव) हमेशा अनक हा होते हैं एक नहीं ॥८॥

(आयो) १४

नैकस्य हि कर्तारौ द्वौस्तौ द्वे कर्मणौ न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेक यतो न स्यात् ॥९॥

अन्वयार्थ—(हि एकस्य) निश्चय से एक द्रव्य के (द्वौ कर्तारौ) दो कर्ता (न स्तः) नहा होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे कर्मणि) दो कम नहीं होते (च) और (एकस्य) एक द्रव्य के (द्वे क्रिये न स्तः) ने क्रियाएँ नहीं होंगी (यत्) क्योंकि (एक अनेक न स्यात्) एक द्रव्य अनेक द्रव्य रूप नहीं होता ॥९॥

(शार्दूलविम्बित) १५

आससारत एव धावतिपर कुर्वेऽहमित्युच्चके-
र्दुर्वार ननु मोहिनामिह महाहकाररूप तम ।
तद्भूतार्थपरिग्रहेण विलय यद्येकवार व्रजे-
त्तत्किं ज्ञानधनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ।

अन्वयार्थ—(आससारत) अनादि काल से (एव) ही (अह पर) मैं पर द्रव्य को (कुर्वे) कता हूँ (नति उच्यते) ऐसा महान दुर्वार)

दुःख से दूर करने योग्य (महार्हकाररूप) महा अभिमान रूप (तम)
 अज्ञानाधकार (इह) इस मत्तार में (ननु) निश्चय से (मोहिना) मोही
 अज्ञानी के (एव धावति) हा दौड़ा आ रहा है (यदि) यदि (तन्) वट
 अज्ञानाधकार (भूतार्थपरिमहेण) शुद्धद्रव्याधिक नय के प्रण से
 (एकवार विलय) एक बार ज्ञान को (प्रवेत) प्राप्त हो जाय (तर्हि
 किं) तो क्या (ज्ञानघनस्थ आत्मन) ज्ञान घन आत्मा के (तत् बधन)
 वह अज्ञानाधकार का संबंध (भूय) फिर से (भवते) हो सकता है
 (अहो) आश्चर्य है (अपितु न भवेत्) अथवा नही हो सकता ॥१०॥

(अनुष्टुप) ५६

आत्मभावां करोत्यात्मा, परभावांसदा पर ।
 आत्मैव ह्यात्मनो भावा परस्य पर एव ते ॥११॥

अन्वयात्—(आत्मा सदा आत्मभावां करोति) आत्मा हमेशा
 आत्मभावा का करता है (पर सदा परभावां करोति) पर द्रव्य सदा
 पर भावा का करता है (आत्मन भावा आत्मा एव) आत्मा के भाव
 आत्मारूप ही है (परस्य स भावा पर एव) पर के वे भाव पररूप
 ही हैं ॥११॥

(वसततिलता) ५७

अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी

ज्ञान स्वयं किल भवन्नपि रज्यते य ।

पीत्वा दधीक्षुमधुराम्ल रसाति गृध्या-

गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसाल ॥१२॥

अन्वयाथ—(य) आ ग्राम (स्त्रि) निश्चय म (रज्य) ज्ञान
 भवनाय) च० चान्स्वरूप नेता हुआ भी (अज्ञाननस्तु) अज्ञान से तो
 तृणाभ्यवहारकारी) तृणाँ को को मनुष्य करने वाले पशु के समान (स
 रज्यते) वह अतृणा मन्ता है (अनौ रमाल) वह मन्मिद्वे रम को
 (पी या) पाश के (न्धीक्षुमधुराश्चरमात्तिगया) न्हा और शक्कर
 की माते और मन् रम की श्रद्धता न (नून निश्चय बन्के (अज्ञानत)
 अज्ञानता से (दुग्ध गा दुग्धि) दूध को माय ॥ गौदन करता है ॥११॥

(शाङ्खल्यिर्वाडित) ५५

अज्ञानान्मृगतृष्णिका जलधियाधावन्ति पातुमृगाः
 अज्ञानात्तममिद्वन्ति भुजगा ध्यासेनरज्जौजना ।
 अज्ञानाच्चविकल्पवक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिरत्-
 शुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्री भवन्त्याकुला

अन्वयाथ—(मृगा अज्ञानात् जलधिया मृग अज्ञान के द्वारा जल
 की बुद्धि से (मृगमृगिका) मृगमृगिका को (पातु धारति) पान
 के लिये गौदन है (जना अज्ञानात्) मनुष्य अज्ञान से (रज्जौ)
 रत्ना में (भुजगाध्यासेन) सर्प की बुद्धि से (तमभि) अन्धकार से
 (द्रवति) भागने है (स्वय अमा) च० ये (जीवा शुद्धज्ञानमया
 अपि) जीव शुद्ध चान्स्वरूप हात दुग्ध मा (अज्ञानात् विकल्पवक्र
 करणात्) अज्ञान से निन्द्यगन्ध की स्वभा के द्वारा (वातात्तरङ्गाब्धि-
 वत् आकुल) वायु से उठ रही हैं तारों जिनमें पने समुद्र के समान
 पान्ति होते हुए (नर्तु भवन्ति) स्तन हा रद है ॥१३॥

(वम-ततिलिङ्गा) ५६

ज्ञानाद्विषेवक्तयातुपरात्मनोर्यो-

जानाति हस इव वा पयसो विशेष ।

चैतन्यधातुमचल स सदाधिरूढो-

जानाति एव हि करोति न किञ्चनापि । १४

अन्वयाथ—(य) ओ आमा (ज्ञानात्) जान में (तु) और (विषे
वक्तया) भेद विचन में (परात्मना) पर और आमा की (विशेष)
विशयता का (वा पयसो विशेष) पानी और दूध की विशेषता को
(हंम अय) हम के समान जानति) चलता है (म) १० (मन्ना)
ममसा (अचल चैतन्यधातु) अचल चैतन्यधामर धातु को (अधि
रूढ) आरुढ़ हुआ (जानाति एव) जानता ही है (किञ्चन अपि न)
कुछ भी न (कराल) बता है ॥३॥

(मन्नामन्ता) ६०

ज्ञानादेव ज्वलनपयमो रौष्णयशैत्य व्यवस्था-

ज्ञानादेवोल्लभतिलवणस्वादभेदव्युदामः ।

ज्ञानादेव स्वरमविक्रमन्नित्यचैतन्यधातो -

क्रोधादेशचप्रभवतिभिदा भिन्दती कर्तृभावम् । १५

अन्वयाथ (ज्वलनपयमो) अग्नि और जल का (रौष्णयशैत्य
व्यवस्था) रण्यता आर, शमलता का भेद (ज्ञानादेव उल्लभति) जान
में ही प्रगट होता है (लवणस्वात्भेदव्युदामः) मर और यान के
स्वाद का भेद (ज्ञानादेव) जल से ही प्रगट होता है (स्वरसविक्रम

नित्यचैतन्यघातो) अपने स्व का विनाश निय नैराश्व घातु (य
(य क्रोधाद कर्तृभा । भिन्दति) और क्रोधादि के कतापन को भेद
कृता हुआ (भिन्ना) भेद (ज्ञानान्तेव प्रभवति) जन म ही प्रादुर्भूत
होता है ॥१५॥

(अनुष्टुप) ६१

अज्ञान ज्ञानमप्येव कुर्वन्नात्मानमजसा ।

स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न स्वचित् १६

अन्यथा—(इयं) इस तरह (अज्ञान) अज्ञान रूप (अपि) और
(ज्ञान) ज्ञान रूप (आत्मान कुर्वन्) आत्मा को कता हुआ (आत्मा) आत्मा
(अजसा) निश्चय न (आत्मभावस्य कर्ता स्यात्) ज्ञान भाव का
करने वाला होता है (परभावस्य स्वचित् न स्यात्) परमात्मा का कता
कभी भी नहीं होता ॥१६॥

(अनुष्टुप) ६२

आत्मा ज्ञान स्वयं ज्ञान ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।

परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यग्रहारिणाम् । १७

अथवा—(आत्मा स्वयं ज्ञान अस्ति) आत्मा स्वयं ज्ञान रूप
है (ज्ञान) आत्मा (ज्ञानात् अन्यत् किं करोति) जन से अन्य
किस का कर्ता है (अपितु) किन्तु (किं अपि न) किसी का भी नहीं
(आत्मा परभावस्य कर्ता अस्ति) आत्मा पर भाव का कता है (अयं-
व्यग्रहारिणाम्) यह व्यग्रहारी जीव का (मोह अस्ति) मोह है ॥१७॥

(वसन्ततिलका) ६३

जीव करोति यदि पुद्गलकर्मनैव—

कस्तर्हि ननु कर्मन दृग्ग्राहिष्ठानमौत ।

एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय—

सक्तीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

अन्वयाय—(यत्ति) यत्ति (जीव पुद्गलकर्म नैव करोति) बीष पुद्गल कर्मा को नहीं करता है (तर्हि) तो (क) कौन (तत्तु) उन पुद्गलिक कर्मा को (कुरुते) करता है (इति) इस प्रकार की (अभि शङ्कया एव) आशङ्क्य से ही (तीव्ररयमोहनिवर्हणाय) तीव्र है बेग निम्नता ऐसे मोह रूप अज्ञान के दूर करने के लिय (पुद्गलकर्मकर्तृ) पुद्गल कर्म के कर्मा को (सक्तीर्त्यते) कहते हैं (यूयं) तुम सब (एतर्हि) इस समय (शृणुत) सुनो ॥१८॥

(उपपत्ति) ६४

स्थितेत्यविध्ना खलुपुद्गलस्य—

स्वभावभूतापरिणामशक्ति ।

तस्या स्थितायां स करोति भाव—

यमात्मनस्तस्य स एव कर्ता ॥१९॥

अन्वयाय—(इति) इस प्रकार (पुद्गलस्य) पुद्गल द्रव्य की (स्वभावभूतापरिणामशक्ति) स्वभावरूप परिणामन रूप मादय्य (खलु) निश्चय मे (अविध्ना स्थिता) निर्विध्वम्भित दूर (तस्या स्थिताया) उस पुद्गल द्रव्य की शक्ति के स्थित होने पर (स आत्मन यम् भाव्य करोति) वह पुद्गल द्रव्य अपने इस भाव को बता है (तस्य) उस भावका (कर्ता) भवन वाला (स एव) वह पुद्गल द्रव्य ही है ॥१९॥

स्थितेति जीवस्यनिरन्तराया—

स्वभावभूतापरिणामशक्ति ।

तस्या स्थिताया मकरोतिभाव—

य स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥२०॥

अन्वय—(इति आरभ्य स्वभावभूता) इस प्रकार जब की
स्वभाव रूप (परिणामशक्ति) परिणाम शक्ति (निरन्तराया) निर्विघ्न
(स्थिता) स्थित हुई (तस्यास्थिताया) "मकार" शक्ति किंतु होने
पर (स) वह जब (स्वस्य तस्यैव करोति) अपने ही भाव का कर्ता
है (निरन्तराया स एव) "मकार" कर्ता बना "इति" (भवेत्)
होता है ॥२०॥

(आया) ६६

ज्ञानमयएव भाव कुतोभवेत् ज्ञानिनो न पुनरन्य.

अज्ञानमय सर्व कुतोऽयमज्ञानिनो नान्य ॥२१॥

अन्वय—(ज्ञानिन) "जी" के (ज्ञानमय) "न" रूप (एव) हा
(भाव भवेत्) मान होता है (पुन) फिर (अन्य) पर भाव (कुत)
जिसे भी तरह स (न भवेत्) कहा हो सकता (अज्ञानिन) अज्ञान के
(अज्ञानमय) अज्ञान रूप (सर्व) सब (अयभाव) य भाव (भवेत्)
होते हैं (अय) दूसरा (कुत) जिसे भी तरह स (न भवेत्) कहा
हो सकता ॥२१॥

(अनुष्टुप) ६७

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवन्ति हि ।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥२२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन सर्वेभावा) ज्ञानी के सभी भाव (हि) निश्चय
म (ज्ञाननिर्वृत्ता) ज्ञान से ग्वे हुए (भवन्ति) रहने ह (तु) और
(अज्ञानिन) अज्ञानी के (ति) व (सर्वे अपि) सभी (भावा अज्ञान
निर्वृत्ता) भाव अज्ञान से रह हुए (भवन्ति) रहने ह ॥२२॥

(अनुष्टुप) ६८

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिका ।
द्रव्यकर्मनिमित्ताना भावनामेति हेतुताम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अज्ञाना) आश्वरी (अज्ञानमयभावाना) अज्ञानमय
भावों का (भूमिका) भूमि गति स्थानों को (व्याप्य) व्याप्त करके
(द्रव्यकर्मनिमित्ताना) द्रव्यकर्म के कारण भूत (भावाना हेतुता)
भावों के हेतुपन का (मेति) प्राप्त करता है ॥ २३॥

(उत्तरद्रव्यम्) ६९

य एव मुक्त्वा नयपक्षपात—
स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्य ।

विकल्पजालच्युतशान्तचित्ता—

स्त एवं साक्षादमृत पिवति ॥२४॥

अन्वयार्थ—(य) जो भी (नयपक्षपात) नया की आशक्ति विशेष
से (मुक्त्वा) छोड़कर (नित्य नय स्वरूपगुप्ता) हमेशा ही निव

रूप में लीन (निवर्तित) होने है (विकल्पचालच्युतशान्त
चित्ता) विद्यन्त चाला क विकल्प जान स शान्त चित्त (ते एव) वे ही
जीव (साक्षात् अमृतं पिबन्ति) साक्षात् अमृत की पाते हैं ॥४॥

(उपजाति) ७०

एकस्य वदो न तथापरस्य—

चित्तिद्वयोर्द्विविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२५॥

अन्वयार्थ—(एकस्य) एक नय की ओर से (जीव वदो) जीव
वधा हुआ है (परस्य) और दूसरे नय की ओर से न (तथा) वधा
हुआ (न) नहीं है (इति) इस प्रकार (चित्ति) आत्मा के विषय में
(द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ पक्षपातो स्त) दो पक्षपात हैं (य च्युत
पक्षपात तत्त्ववेदी अस्ति) जो पक्षपात रहित तत्त्व को जानने वाला
है (तस्य खलु नित्य) उसमें निश्चय से हमेशा (चित्) चेतन्य (चित्त)
चेतन्य (एव अस्ति) ही है ॥ २५॥

(उपजाति) ७१

एकस्य मूढो न तथा परस्य—

चित्ति द्वयोर्द्विविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२६॥

अवधार्य—(एकस्य) एक नय की अपेक्षा से (मूढ) मोही (अस्ति) है (परस्य) दूसरे नय की अपेक्षा से (तथा न अस्ति) मोही नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात (स्त) है (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी) तत्त्व को जानने वाला (च्युतपक्षपात अस्ति) पक्षपात रहित है (तस्य) उसके (खलु) निश्चय करके (चित्) चैतन्य-आत्मा (चिदय) चैतन्य ही (नित्य) हमेशा (अस्ति) है ॥२६॥

(उपजाति) ७२

एकस्परक्तो न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तम्याति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२७॥

अर्थ—(एकस्य रक्त अस्ति) एक नय की अपेक्षा से भीव राग करने वाला है (परस्य रक्त न अस्ति) दूसरे नय की अपेक्षा से रागी नहीं है (चिति) चैतन्य आत्मा में (द्वयो) दोनों नयों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युत पक्षपात अस्ति) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात रहित है (तस्य) उसके (खलु चित् चिदवनित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२७॥

(उपजाति) ७३

एकस्यदुष्टो न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पत्तपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२८॥

अवयव—(एकस्य नवस्य अपेक्षया दुष्ट अस्ति) एक नव
का अपेक्षा में दुष्ट है (परस्य नवस्य अपेक्षया दुष्ट नास्ति) दूसरे
नव की अपेक्षा में दुष्ट नहीं है (इति) ऐसे चैतन्य में (द्वयो)
गना नवों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य)
को (तत्त्ववेदी व्युत्पत्तपात) तत्व को जानने वाला पक्षपात से रहित
है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसमें निश्चय करने चैतन्य
आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥२८॥

(उपजात) ७४

एकस्यकर्ता न तथा परस्य—

चिनि द्वयोर्द्वौ चिति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पत्तपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥२९॥

अवयव—(एकस्य) एक नव में (जात कर्ता) जो करता है
(परस्य) दूसरे नव में (तथा न) करता नहीं है (इति चिनि) एक
चैतन्य में (द्वयो) गानों नवों के (द्वौ) दो (पक्षपातौ) पक्षपात हैं
(इति) इस तरह (य) को (तत्त्ववेदी व्युत्पत्तपात) तत्व को जानने
वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसमें
निश्चय करने चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥ २९ ॥

एकस्य भोक्ता न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३०॥

अवधार—(एकस्य) एक नय में (भोक्ता) भोक्ता है और (परस्य) दूसरे नय में (तथा न) भोक्ता नही है (इति चिति) इस प्रकार चतुर्थ में (द्वयो) दोनों नया के (द्वौ पक्षपातौ) गे पक्षपात हैं ॥३०॥ (इति) इस तरह (य) आ (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात में रहित है (तस्य सलुचिच्चिद्वि नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके सैकन्य आमा सैकन्य ही हमेशा है ॥३१॥

(उपजाति) ७६

एकस्य जीवो न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३१॥

अवधार—(एकस्य जीवो) एक नय से जीव है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नही है (इति चिति) इस प्रकार चतुर्थ में (द्वयो) द्वौ पक्षपातौ) दोनों नया के गे पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) आ (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात में रहित है

(तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य
आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३१॥

(उपजाति) ७७

एकस्यसूक्ष्मो न तथा परस्य—

चित्तिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३२॥

अन्वयाय—(एकस्य सूक्ष्म) एक नय से नीचे सूक्ष्म है (परस्य
तथा न) दूसरे नय से जाय सूक्ष्म नहीं है (चित्तिद्वयो द्वौ पक्षपातौ)
ऐसे चैतन्य में जो नया के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो
(तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है
(तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य
आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३२॥

(उपजाति) ७८

एकस्यहेतु न तथा परस्य—

चित्तिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३३॥

अन्वयाय—(एकस्य हेतु) एक नय से हेतु है (परस्य तथा न)
दूसरे नय से हेतु नहीं है (इति चित्तिद्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे चै

चैतन्य में जो नया के दो पक्षगत हैं (इति) हम तरह (य) जो (तत्त्ववेदी
च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य सलु
चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही
हमेशा है ॥३३॥

(उपजाति) ७६

एकस्यकार्यं न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३४॥

अप्यर्थ—(एकस्य कार्य) एक नय से कार्य है (परस्य तथा न)
और दूसरे नय से कार्य नहीं है (इति चिति द्वयोर्द्वा पक्षपातौ)
ये चतन्य में दोनों नयों के दो पक्षगत हैं (इति) हम तरह (य) जो
(तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है
(तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य
आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३४॥

(उपजाति) ८०

एकस्यभावो न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३५॥

अन्यथा—(एकस्य भाव) एक नय से मार है (परस्य तथा न) दूसरे नय से मार नही है (इति चित्ते द्वयो द्वौ पक्षपातौ) य चैत मे दोना नयों के १ पक्षपात ॥ (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेद्य च्युतपक्षपात) तब को जानन वाला पक्षपात से रहित है (तस्य सत्त्व चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य है हमेशा है ॥३५॥

(उपनि) ८१

एकस्यचैको न तथा परस्य—

चित् द्वयोर्द्वाचित् पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सत्त्वचित्चिदेव ॥३६॥

अन्यथा—(एकस्य जीव एक) एक नय से मार एक है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अनेक है (इति चित् द्वयो द्वौ पक्षपातौ) य चैतन्य मे दोना नयों के पक्षपात है (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तब को जानन वाला पक्षपात से रहित है (तस्य सत्त्व चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य है हमेशा है ॥३६॥

(उपनि) ८२

एकस्य मातो न तथा परस्य—

चित् द्वयोर्द्वाचित् पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सत्त्वचित्चिदेव ॥३७॥

अवयव—(एकस्य शात) एक नय से शात (अतसद्वित) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से अतसद्वित नहा है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इमं तद् (य) जो (तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३७॥

(उपनिषद्) ८३

एकस्य नित्यो न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वौ चिति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥३८॥

अवयव—(एकस्य नित्य) एक नय से जीव नित्य है (परस्य तथा न) दूसरे नय से जीव नित्य नहा है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दो नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इमं तद् (य) जो (तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३८॥

(उपनिषद्) ८४

एकस्य वाच्यो न तथा परस्य—

चितिद्वयोर्द्वौ चिति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पन्नपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३६॥

अन्वयाय—(एकस्य वाच्य) एक नय से जीव वाच्य (वचन से कहने में आये है (परम्य तथा न) दूसरे नय से यचनागोचर कहने में नहीं आता है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी व्युत्पन्नपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३६॥

(व्यपत्ति) ८५

एकस्य नाना न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वौ चिति पक्षपातौ ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पन्नपात—

स्तस्यास्ति नित्य खलुचिच्चिदेव ॥३७॥

अन्वयाय—(एकस्य नाना) एक नय में नाना रूप हैं (परम्य तथा न) दूसरे नय से नाना रूप कहा है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) “ तरह (य) जो (तत्त्ववेदी व्युत्पन्नपात) तत्त्व को जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य खलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय करके चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥३७॥

एकस्य चेत्यो न तथा परस्य--

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥४१॥

अन्यार्थ—(एकस्य चेत्य) एक नय से चेत्य अथवा ज्ञानन योग्य है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से ज्ञानने योग्य नहीं है (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को ज्ञानन वाला पक्षपात से गड़ित है (तस्य सलु चित् चित् नित्य अस्ति) उसके निश्चय कर्ण चैतन्य आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४१॥

(उपजाति) ८७

एकस्य दृश्यो न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेव ॥४२॥

अन्यार्थ—(एकस्य दृश्य) एक नय से दृश्य (दिखने योग्य) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से देखने में नहीं आता (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नयों के दो पक्षपात हैं (इति) इस तरह (य) जो (तत्त्ववेदी च्युतपक्षपात) तत्त्व को ज्ञानन वाला

पक्षपात से रहित है (तस्य गलु चित् चिन्म नित्य अस्ति) उसके निश्चय करने के लिये आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४२॥

(उपजाति) ८८

एकस्य वेद्यो न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेन ॥४३॥

अन्वयः—(एकस्य वेद्य) एक नय से वेद्य (चैतन्य याज्ञ) है (परस्य तथा न) दूसरे नय से वेदन में नहीं आता (इति चिति द्वयो द्वौ पक्षपातो) ऐसे चैतन्य में लीन नया के दो पक्षपात हैं (इति) कम तरह (य) जो (तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात) तब भी जानने वाला पक्षपात से रहित है (तस्य गलु चित् चिन्म नित्य अस्ति) उसके निश्चय करने के लिये आत्मा चैतन्य ही हमेशा है ॥४३॥

(उपजाति) ८८

एकस्य भातो न तथा परस्य—

चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातो ।

यस्तत्त्ववेदी व्युत्पक्षपात—

स्तस्यास्ति नित्य सलुचिच्चिदेन ॥४४॥

अन्वयः—(एकस्य भात) एक नय से वतमान प्रत्यक्ष है और (परस्य तथा न) दूसरे नय से वतमान प्रत्यक्ष नहीं है (इति चिति

द्वयो द्वौ पक्षपातौ) ऐसे ये चैतन्य में दोनों नहीं के दो पक्षपात हैं और
(य तत्त्ववेदी) जो तत्त्व वेदी हैं वह स्वरूप का यथार्थ अनुभव करने
वाले हैं (तस्य चित्ति चित्तेव नित्यं सत्तु) उनका चित्तमान भाव है वह
चिन्मात्र ही है (च्युतपक्षपात) पक्षपात से रहित है ॥४४॥

(वसवतिलका) ६०

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला—

मेव व्यतीत्य महती नयपक्षपातां ।

अतर्वहिः समस्तैकरमस्वभाव—

स्व भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्र ॥४५॥

अव्याप—(य तत्त्ववेदी) जो आत्मा तत्त्व का जानने वाला है
(स एव) वह पूर्वोक्त प्रमाण से (स्वेच्छा समुच्छलनल्पविकल्प-
जाला) भरती हुआ स उत्पन्न रहे हैं अनन्त विस्तर के जाल जिसमें ऐसी
(महती) बड़ी भारी (नयपक्षपाताम्) नयपक्षपात रूपी वन की (व्यतीत्य)
उल्लङ्घन कर (अतर्वहिः समस्तैकरमस्वभाव) अतः ही और
वहिसर में समस्त रस ही है एक रस रूप स्वभाव जिसका ऐसे (स्व
अनुभूतिमात्र) अपनी अनुभूति रूप (एक भाव उपयाति) एक
अद्वितीय भाव का प्राप्ति करता है ॥४५॥

(स्थोदता) ६१

इन्द्रजालमिदमेवमुच्छल—

त्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः ।

यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षण—

कृत्स्नमभ्यति तदस्मिचिन्मह' ॥४६॥

अवयवार्थ—(य तत्त्ववेत्ता) जो तत्त्व को जानने वाला है (म त्व अनुभवति) वह ही प्रमा अनुभव करता है (यत्) जो (अह) मैं (चिन्मह अस्मि) चैतन्य तेज रूप हूँ (तत्) यह अनन्यात्मक तेज (पुष्कलोच्चलधिफरपवीचिभिः) पत्तियों चंचल विकल्परूप तरंगों से त्व उन्मूलति) मम त्व उन्मे हुए (इह कृत्स्नम इन्द्रजाल) इस सम्पूर्ण इन्द्र जाल का (यस्य विस्फुरण) विमर्श चंचलता (तत् क्षण मय अभ्यति) उमा समय ही दूर कर देता है ॥४६॥

(स्वागता) १७

चित्स्वभावभरभावितभावाभासभावपरमार्थतयैक।

बन्धपद्धतिमपाम्यसमस्ताचेतयेसमयसारमपार ४७

अवयवार्थ—(अह चित्स्वभावभरभावितभावाभासभावपरमार्थ तया) चैतन्य स्वभाव क मूल ॥ नास्ति मात्र अभ्यात्मक भावरूप परमार्थपने न (ममस्ता बन्धपद्धति) सम्पूर्ण यत् की पद्धति को (अपाम्य) दूर कर (एव अपार समयसार चेतय) एक अपार समयसार को अनुभव करता है ॥४७॥

(शार्दूलविक्रीडित) १३

आत्ममन्नविकल्पभात्रमचल पक्षैर्नयानाविना

मारोय समयस्यभाति निभृतेरास्वाद्यमान स्वय ।

विज्ञानैक रस स एष भगवान् पुण्य पुराण पुमान्
ज्ञानदर्शनमप्ययकिमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम्।४८

अन्वयार्थ—(य नयाना) जो नयों के (पक्षों बिना) पक्षों के बिना
(अचल) अचल (अविफलभाव) निर्द्विषय मार को (आक्रामक
निभूत) प्राप्त करता हुआ निश्चिन्त पुरुषों से (रजय) स्वयं (अस्या
द्यमान) अनुभूयमान, समयस्य मार) आत्मा का मार (भाति)
शोभित होता है (स) वह (विज्ञानैकरस) विज्ञान ही है एक रस
शिमका (एष) यह (भगवान् पुण्य पुराण) भगवान् पवित्र पुराण
(पुमान्) पुरुष (अयं ज्ञानं) यह ज्ञान (अपि) और (दर्शनं) दर्शन
(अथवा किं) और तो क्या (यत् किञ्चन) जो कुछ (अपि) भी है
(स अयं एक) वह यह एक आत्मा ही है ॥४८॥

(शास्त्रनिर्णीडित) ६४

दूरभूरि विकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्युतो
दूरादेव विवेकनिम्नगभनान्नीतोनिजौघ वलात्
विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्मा हरन्
नात्मन्येव सदागतानुगतता मायात्ययतोयवत्।४९

अन्वयार्थ—(अयं आत्मा) यह आत्मा (निजौघात्च्युत) अपने
ज्ञान धन स्वभाव से च्युत हुआ (भूरिविकल्पजालगहन) महान
विकल्प जाल रूपी वन में (दूर) अन्धकार जाल से (भ्राम्यन्) घूमता हुआ
(विवेकनिम्नगमनात्) विवेक रूप नीचे मार्ग में गमन करने से
(वलात्) बलपूर्वक (दूरात्) दूर से ही (निजौघ) अपने ज्ञान धन
स्वभाव को (नीत) प्राप्त हुआ (विज्ञानैकरस) विज्ञान ही है एक रस

जिसका ऐसा (तदेकरमिना) विज्ञान रूप एक मम हो पुरुषों व
(आत्मान मोक्षदत्) आमा को जन के समान (आत्मनिष्पहरन्
आमा भ ही मिलाना हुआ (मन्नागतानुगतता) निरंतर देगादेखी
को (याति) प्राप्त करता है ॥६६॥

(अनुपुष) ६५

विकल्पक पर कर्ता विकल्प कर्म केवल ।

न जातु कर्तृकर्मत्तस विकल्पस्य नस्यति ॥५०॥

अन्वय—(विकल्पक पर कर्ता अस्त) विकल्प करने जाला हा
कता है, (विकल्प फल कर्म अस्ति) विकल्प ही कर्म है (सविकल्प
स्य कर्तृकर्मत्तस) विकल्पजन के कता कर्मपना (जातु न नस्यति)
कमा भा नाश का प्राप्त नहा होता ॥५०॥

(रथोद्धता) ६६

यः करोति न करोति केवल—

यस्तु वेत्ति न तु वेत्ति केवल ।

यः करोति न हि वेत्ति न स्वचित्—

यस्तु वेत्ति न करोति स्वचित् ॥५१॥

अन्वय—(य) वा (करोति) कता है (स) केवल करोति) नह
केवल कता हा है (तु) आग (य) वा (वेत्ति) जानता है (स) यह (तु) तो
(करोति) फल (वेत्ति मय) जानता ही है (य) वा (कराति) कता है
(स) वह (हि) निश्चय स (स्वचित् न वेत्ति) कुछ भी नहीं जानता
(तु) और (य वेत्ति) वा जानता है (स) यह (स्वचित् न करोति)
कुछ भा नहीं करता है ॥५१॥

(इन्द्रजम्भा) ६७

ज्ञप्ति. करोतौ न हि भासतेऽन्त—

ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्त ।

ज्ञप्ति करोतिश्च ततोऽभिन्ने—

ज्ञाता न कर्तेति तत स्थितच ॥५२॥

अन्वयाथ—(करोतौ) करानि क्रिया में (ज्ञप्ति) ज्ञान रूप क्रिया (हि) निश्चये (अतः) अन्तरग में (न) नहा (भासते) प्रतिभाषित होती है (ज्ञप्तौ करोति) ज्ञानने रूप क्रिया में करने रूप क्रिया (अतः न भासते) अन्तरग में नहा प्रतिभाषित होती है (तत ज्ञप्ति) इसलिये ज्ञानता (च) और (करोति) करना (अभिन्ने) अत्यन्त भिन्न भिन्न हैं (तत) इसलिये (ज्ञाता) ज्ञानने वाला (कर्ता) करने वाला (न स्थान्) नहा हो सक्ता (इतिरित्यत) एसा स्थित हुआ ॥५२॥

(शास्त्रोक्तविक्राडित) ६८

कर्ता कर्मणि नास्ति, नास्तिनियत कर्मापितत्कर्तरि
 द्वन्द्व विप्रतिषिध्यतेयदि तदाका कर्तृकर्मस्थिति.
 ज्ञाता ज्ञातरि कर्मकर्मणि मदा व्यक्तेतिवस्तुस्थितिः
 नेपथ्येवत नानटीतिरभसामोहस्तथाप्येपकिं॥५३॥

अन्वयाथ—(कर्ता) कर्ता (कर्मणि) कर्म में (नियत नास्ति) निश्चय में नहा है (तत) इसलिये (कर्तरि) कर्ता (कर्मश्चपि नास्ति)

कर्म भी नही है (यन् हि ईदृ) यन् नेनी (विप्रतिषिध्यते) विशेष रूप से निषेध द्विष्य आते हैं (तन्मा कर्तुं कर्म स्थिति) तो कता और कर्म का स्थिति (का) कैसा (ज्ञाता) जानने वाला (ज्ञातरि) जान में (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (कर्म) कम (कर्मेण) कम में (सदा अस्ति) हमेशा रहता है (न्ति) इस प्रकार (वस्तुस्थिति) कर्तु की मयादा (यच्छे) रूप हूँ (तथार्थ) तो भी (एष मोह) यह मोह (रभसा मपश्ये) शास्त्र २१ गारागार में (किं नानदीति) क्यों बार बार नाचत है (इति यत्) य० ए० ६ ॥३३॥

(मंजाता) ६६

कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव
ज्ञान ज्ञान भवति च यथा पुद्गल पुद्गलोऽपि
ज्ञानज्पातिर्ज्वलितमवल व्यक्तमस्तथोच्चे
श्चिच्छक्तीनानि करभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत् ॥५४॥

अन्याय—(यथा) जैसे आत्मा अज्ञान अस्थायी में (कर्ता) बिमान मारों का कता (आसान्) था (तथा) तैसी (इदानीं) इस समय अज्ञान भावों का (कर्ता न अस्ति) करन वाला नही है (यथा) जैसे आर के अज्ञान में जो पुद्गल कम द्रव्य कर्म रूप (आसीत्) था (अ) वह पुद्गल (इदानीं) इस समय (कम) द्रव्य कर्म रूप (न भवति) नही होता (यथा) जैसे (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञान एव) ज्ञान ही (भवति) होता है (तथा) वन (पुद्गल अपि) पुद्गल भी (पुद्गल भवति) पुद्गल होता है (तथा) वैसे ही (अतः) अतएव में (श्चिच्छिच्छक्तीना) मदान चैतन्य शक्तियों के (निकरभरत) समुदाय के भार से (अत्यन्त

गोभीर) अन्ततः समार (तन्म अचल) यह निश्चय (दानयोगेति
व्यक्तं व्यलित) शून्य रूपी प्रसाद एतत् रूप मे प्रसादित हुआ ॥५॥

॥अथ पुण्यपापाधिकार. प्रारम्भते॥४॥

(श्रुतविलम्बित) १००

तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो—

द्वितयतागतमेवमुपानयन् ।

ग्लपितनिर्भरमोहरजा अथ

स्वयमुदेत्यत्र बोधसुधाप्लव ॥१॥

अन्वयार्थ—(अथ) इनके बाद अर्थात् जना कम अधिकार के पश्चात्
(अर्थ ग्लपितनिर्भरमोहरजा) यह बात कर दिया है मोह रूपी
महान रज को मिटने एका (अवबोधमृधाप्लव) मन्त्रदान रूपी
चन्द्रमा (स्वय शुभाशुभभेदत) शुभ शुभ और अशुभ अर्थात् पुण्य
पाप के भेद मे (द्वितयता) दो भेद करने को (गत) प्राप्त हुए (तत्कर्म)
उन कर्म की (ग्लप्य उपनयन् उदति) एतत्ता को प्राप्त करता हुआ उन्म
हता है ॥१॥

(मदावाता) १०१

एको दूरात्यजनि मदिरा ब्राह्मणत्वाभिमाना—

दन्य शूद्र स्वयमहमिति स्नाति नित्य तथैव ।

द्वानप्येतौ युगपददरान्निर्गतौ शूद्रिकाया.—

शूद्रौ माक्षादथ च चरतो जातिभेदभ्रमेण ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रुतिपाथा दूरात्) सू. १ के उ. २ में (युगान् निर्गतौ) एक मास में २४ (द्वौ) दो (एतौ) य (श्रुतौश्चरि) स्रष्टः (तयः) आह्वयत्वाभिमानात्) एक आह्वयत्वा के अधिमान (मदिरा) मरिच को (दूरात्) दूर में (स्थिति) छोड़ना है (अन्य अ श्रुत आग्नि) दूरात् ॥ श्रु. ६ (इति स्वयं गित्य तथा ण्य स्नाति स्नानियं नु इमं गता उत मरिच मे ह स्नानं कर्त्ता है (साक्षात् चरि भ्रमधमण चरन) भ्रमचरि जनि के भ्रम के भ्रम से आनन्द करता है ॥ ॥

(न्यजाति) १०२

हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा—

सदाप्यभेदान्नहि कर्मभेद ।

तद्ध धमार्गाश्रितमेकमिष्ट—

स्वयं ममस्त सद्य वधहेतु ॥३॥

अन्वयार्थ—(हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणा) हेतु, स्वभाव, अनुभव और आश्रय के (सदा अभेदान्) हमेशा अभेद होने ॥ (हि कर्मभेद नास्ति) निश्चय कर कर्म भेद नहीं ॥ (तत) इत्यलिय (धमार्गाश्रितु) धम मार्ग के आश्रित (कर्म स्वयं ममस्त वधहेतु) यम मुद सम्पूर्ण वध का कारण (सद्य इष्ट) निश्चय से इष्ट है ॥२॥

(स्वागता) १०३

कर्मसर्वमपि सर्वविदोय—

तद्ध धमाधन मुशन्त्यविशेषात् ।

तेन सर्वमपि तत्प्रतिपिद्ध—

ज्ञानमेव चिह्नित शिवहेतु ॥४॥

अवधारण—(सर्वविद्) सर्वश्रेष्ठ (सर्व कर्म) सम्पूर्ण शुभ
अशुभ कर्म को (या अविशेषात्) जिसका कारण सामान्य रूप से
(प्रथमाधनउत्पत्ति) यथ का साजन कहते हैं (तेन) तिन कारण से
(तत्) तद् (सर्व अपि) सम्पूर्ण कर्म भी (प्रतिपिद्ध) निपिद्ध रूप
हुआ (ज्ञाने एव शिवहेतु चिह्नित) ज्ञान ही शिवहेतु काहये मोक्ष का
कारण स्थित हुआ ॥४॥

(शिवरखी) १०४

निपिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किन्
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न सल्लु मुनय सन्त्यशरणा ।
त । ज्ञाने ज्ञान प्रतिचरितमेवा हि शरण
स्वयविन्दन्त्येते परमममृत तत्रनिरत ॥५॥

अवधारण—(सर्वस्मिन्) समस्त (सुकृतदुरिते) पुण्य और पाप रूप
(कर्मणि) कर्म के (निपिद्धे) निषेध मिये ज्ञान पर (किन्) निश्चय से
(नैष्कर्म्ये) कर्मरहित अथात् निवृत्ति के (प्रवृत्ते) प्रवर्तित ज्ञान पर (सल्लु)
निश्चय स (मुनय) मुनिजन (अशरणा) शरणरहित (न संति) नही हो
सकते (तदा) उस समय (एवा) इन मुनिजनों के (ज्ञाने) ज्ञान में (प्रति
चरिते) आचरण किया गया (ज्ञाने) ज्ञान ही (शरणं भवति) शरण
होता है (तत्र) उस ज्ञान में (निरत) मग्न (एत) ये मुनिजन (स्वय)
स्वत (परमम्) अथ (अमृत) अमृत को (विन्दन्ति) प्राप्त करते हैं ॥५॥

यदेतत् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवन—
शिवस्याय हेतु स्वयमपि यतस्तच्छिव इति ।
अतोऽन्यद्वन्धस्य स्वमपि यतो बन्ध इति तत्
ततो ज्ञानात्मत्व भवनमनुभूतिर्हि विहित ॥६॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो (एतत्) यह (ज्ञानात्मा) ज्ञानरूप आत्मा
(ध्रुवमपि) ध्रुव है (तत्) अचल) वह निश्चल (आभाति) शोभित
होता है (अयम्) यह ज्ञान स्वरूप आत्मा (शिवस्य भवन) मोक्ष का होना
रूप (हेतु) कारण (अस्ति) है (यतः) क्योंकि (इत्ययम्) पुनः आत्मा ही
(शिव अस्ति) मोक्ष रूप है (इति) इसलिये (अत आयात्) इस आत्मा से
अत्यन्त निम्न (बन्धस्य) बन्ध का कारण है (यतः) क्योंकि (इत्ययम्) वह
वह भिन्न पदार्थ बन्ध अस्ति) बन्ध रूप है (इति) इसलिये (ज्ञानात्मत्व,
ज्ञानरूप (भवन) होना (हि) निम्न से (अनुभूति) अनुभूति है (ततः
तिस कारण से (नम्) उस बन्ध का और मोक्ष का भिन्न (विहित) क्रिय
गया है ॥६॥

(अनुष्टुप) १०६

वृत्त ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवन सदा ।
एकद्रव्यस्वभावत्वान्मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानस्वभावेन) ज्ञानरूप स्वभाव से (वृत्त) प्रवर्त
(सदा) सदा (ज्ञानस्य भवन) ज्ञान का होना (अस्ति) है (तत्)
वह ज्ञान स्वभाव (एकद्रव्यस्वभावत्वात्) एक आत्मद्रव्य का स्वभाव
होने से (तदेव मोक्षहेतु अस्ति) वह ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है ॥७॥

(अनुष्टुप) १०७

वृत्त कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवन न हि ।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥८॥

अन्वयाथ—(कर्मस्वभावेन) कम रूप स्वभाव से (वृत्त अस्ति) यतना है (तत्) यह (ज्ञानस्य भवन) ज्ञान का होना (हि) निश्चय से (न) नहीं है (तत् कर्म) यह कम स्वभाव । (द्रव्यान्तरस्वभावत्वात्) आत्मा से भिन्न द्रव्य का स्वभाव होने से (मोक्षहेतु) मोक्ष का कारण (न) नहीं है ॥८॥

(अनुष्टुप) १०८

मोक्षहेतुतिरोधानाद्वन्धत्वात्स्वयमेव च ।
मोक्षहेतुतिरोधायिभावत्वात्तन्निषिध्यते ॥९॥

अन्वयाथ—(मोक्षहेतुतिरोधानात्) मोक्ष के कारण को रोकने से (च) और (स्वयमेव) खुद (बन्धत्वात्) बध रूप होने से (मोक्ष हेतुतिरोधायिभावत्वात्) मोक्ष के कारण को रोकने रूप स्वभाव वाला होने से (तत्) यह कम (निषिध्यते) निषेध किया जाता है ॥९॥

(शार्दूलविक्रीडित) १०९

सन्यस्तत्र्यमिदं ममस्तमपि तत्कर्मैवमोक्षार्थिना ।
सन्यस्ते सांत तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भवत्
नैष्कर्मप्रतिबद्धमुद्धतरमज्ञानं स्वयधावति ॥१०॥

अन्वयाथ—(मोक्षार्थिना)मान व चाहन बाणों को(इद)यह(ममस्त
अपि कर्म)सम्पृक्तम(संयस्त यम् पत्र)छोना हा जाहिए(तत्र)उस कर्म
क(संयस्त सति) छोड़ने पर(पुण्यस्य) पुण्य की (वा)अथवा(पापस्य)
पापकी (किल) निश्चय स (का कथा) क्या कथा (भवत्) हो सक्ती है
(सम्यक्त्वादिनिवृत्तभावभवनात्) सम्यग्दर्शन आदि आत्म स्व
भाव होने स (मोक्षस्यहेतु) मोक्ष का कारण (भवन्) होता हुआ
(नैष्कर्मप्रतिबद्धं) कर्मरहित ज्ञान (सद्धतरस) प्रगट रस वाला (ज्ञानं)
ज्ञान (स्थय धायति) स्वन दीड़ आग है ॥१०॥

(शादूलविमोडित) ११०

यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यग्नु सा।
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षति
कत्वत्रापि समुल्लसत्य वशतो यत्कर्म वधाय तत् ।
मोक्षायस्थितमेकमेव परम ज्ञान विमुक्त स्वतः॥११

अन्वयाथ—(यावत् पाक) जब तक कर्म का उत्प (उपैति) प्राप्त
होगा है (ज्ञानस्य) ज्ञान की (साकम विरति) वह कर्म शून्यता
(सम्यग्ज्ञान) मन्वी नहीं है (तावत्) तब तक (कर्मज्ञानसमुच्चयोपि)
कर्म और ज्ञान का मेन भी (विहित) कना गया है (काचित्क्षति) हमसे
काद क्षति (नास्ति) नहीं है (किन्तु) परन्तु (अत्रापि) यहां पर भी
(अवशत) आत्मा के बंध के बिना (यत्कर्म) जो कर्म (समुल्लसति)
उत्प को प्राप्त होता है (तत्र) वह कर्म (वधाय भवति) बंध के लिये
होता है (इत) इस (विमुक्त) छुटा हुआ (परमम्) धण्ड (एक) एक
(ज्ञानम्) ज्ञान ही (मोक्षाय) मोक्ष के लिये (स्थित) स्थित होता है ॥११॥

अवयाध—(पातमोह) पिया है माँ को जिम्ने (भ्रमरसभरात)
 निपगतता रूप रस के पार से (भेदो-माद) पुण्य और पाप रूप में के
 उन्माद को (सादृश्यत) नवान वाले (तत्सकल श्रवि कर्म) उस सम्पूर्ण
 कर्म को (बलेन) रत्न पृथक् (मूलो मूलकृत्या) ज्ञ से उगाड़ कर (हिलो मा
 लत्परमफलया) कीड़ा मान से प्रगत उत्कृष्ट कला के (सार्द्धम)
 साथ (आर-धनेलि) प्रारम्भ कर लिया है कीड़ा को जिम्ने (कज्जित
 तम) पर अज्ञान अवधार को जिम्ने नाश कर लिया ऐसा (ज्ञानउद्योति)
 ज्ञान रूपा महान तज (भरेख प्रोडननृम्भे) अतिशय रूप से प्रगत
 हुआ ॥१५॥

॥ अथ ग्रासवाधिरार लिरयते ॥

(द्रुतविलिखित) ११३

अथ महामदनिर्भरमन्थर—

समररङ्गपरागतमास्त्र ।

अयमुदारगभीरमहोदयो—

जयतिदुर्जयबोधधनुर्द्धर ॥१॥

अवयाध—(अथ) इसके बाद (अथ) यह (उदारगभीरमहो-
 दय) विशाल गभीर और महान उदय वाला (दुर्जयबोधधनुर्द्धर)
 दुर्ग स जानने योग्य ज्ञान रूपी धनुर्धर (महामदनिर्भरमन्थर)
 महान अङ्कुर के भार से व्यात (समररङ्गपरागत) युद्ध रूपी रंग
 भूमि में आवे हुए (आम्बध) आम्ब को (जयति) जीतता है ॥१॥

भावोरागद्वेषमोहैर्विना यो—

जीवस्य स्याद् ज्ञाननिवृत्त एव ।

रुन्धन्सर्वान् द्रव्यकर्मस्त्रयोधा—

नेपो भाव सर्वभावास्त्रयाणाम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(जीवस्य) जीव का(य) जो (रागद्वेषमोहैर्विना) राग द्वेष और मोह के बिना (ज्ञाननिवृत्त) शन से रचा गया (भाव स्यात्) भाव होता है (एव) यह (भाव एव) भाव ही (सर्वभावास्त्रयाणां) रागद्वेष भावसर्वा का (सर्वान्) सभी (द्रव्यकर्मस्त्रयोधान्) द्रव्य कर्मों के आवरण रूप मनु को (रुन्धन्) रोक्ता हुआ (अभाव) अभाव रूप (स्यात्) होता है ॥२॥

भावास्त्रयाभावमयप्रपन्नो

द्रव्यास्त्रयेभ्य स्वत एव भिन्न ।

ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो

निराक्षरो ज्ञायक एव ॥३॥

अन्वयार्थ—(भावास्त्रयाभावं) भावास्त्रय के अभाव का (प्रपन्न) प्राप्त हुआ (अय) यह (द्रव्यास्त्रयेभ्य) द्रव्यास्त्रयों से (स्वत एव भिन्न) स्वयंमय भिन्न (अस्ति) है (सदा) निरन्तर (ज्ञानमयैकभावो) शन रूप

एक भावजन (निगम्य) आगर गहि (छाया) शनन बग
(ज्ञानी एव एव अग्नि) जनी एक हा ६ ॥ ॥

(शास्त्रोक्तिकादिन) १८६

सन्न्यम्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं राग समग्रं स्वयम्
वारवारमबुद्धिपूर्वमपि त जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन् ॥
उच्छिद्यन्दन् परवृत्तिमेव सकला ज्ञानस्य पूर्णो भवत् ।
नात्मानित्यनिरास्यो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ४

अन्वयाय—(निजबुद्धिपूर्व) अपना बुद्धिपूर्व (समग्र) सम्म
(रागं स्वयं) राग को पुं (अनिशं) निरंतर (सन्न्यम्यन्) दृष्टा
द्वारा (अबुद्धिपूर्वमपि) अबुद्धिपूर्व हा (त जेतुं) उस राग को जीतने
के लिए (वारवार स्वशक्तिं) बार बार अपनी शक्ति को (स्पृशन्)
स्पर्श करना हुआ (सकला) सम्म (परवृत्ति) पर परिणति को (उच्छिद्य
न्दन्) नाश करता हुआ (ज्ञानस्य पूर्ण) ज्ञान में पूर्ण [भवन्] होता
हुआ (आत्मा यदा) आत्मा जब (नित्यनिरास्य) निरंतर आव्यव
शान होता है (नृदाहि) उस सम्म निश्चय से (ज्ञानी स्यात्) ज्ञानी
होता है ॥४॥

(अनुष्टुप) ११७

सर्वस्यामेव जीवन्त्या द्रव्यप्रत्ययसततौ ।
कुतो निरास्यो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥५॥

अन्वयाय—(सर्वस्यामेव) सभी (द्रव्यप्रत्ययसततौ) द्रव्यप्रत्यय की
सतत के (जीवन्त्या) जीवन्त हुए (ज्ञानी) ज्ञानी (नित्य एव) नित्य ही

(निराम्बुध) आम्बुध रहित (कुत स्यात्) कैसे हो सकता है (इति) एमी (चेत्) यदि (मति अस्ति) बुद्धि है (तर्हि) तो ॥५॥

(मालिनी) ११८

विजहति न हि सत्ता प्रत्यया पूर्ववद्धा
समयमनुसरन्तो यद्यपि द्रव्यरूपा ।
तदपिसकलरागद्वेषमोहव्युदासा—
दयतरति न जातु ज्ञानिन कर्मबन्ध ॥६॥

अन्वयाथ—(यद्यपि) यद्यपि (पूर्ववद्धा) पहले अज्ञान अवस्था में वध का प्राप्त हुए (द्रव्यरूपा) द्रव्य रूप (प्रत्यया) आम्बुध (समय) अपनी कालकृत मयाग को (अनुसरन्त) अनुसरण करते हुए (सत्ता) सत्ता को (हि) निश्चय से (न विजहति) महा छोड़ते (तत् प) ता भी (ज्ञानिन) ज्ञानी के (कर्मबन्ध) कर्मबन्ध (सकलरागद्वेषमोहव्युदासात्) सम्पूर्ण रागद्वेष मोह के निराकरण करने से (जातु) कभी (न दयतरति) महा होता है ॥६॥

(अनुष्टुप) ११९

रागद्वेषविमोहानां ज्ञानिनो यदमभव ।
तत एव न बधोऽस्य ते हि वधस्य कारणम् ॥७॥

अन्वयाथ—(यत्) इस कारण (ज्ञानिन) ज्ञानी के (रागद्वेष विमोहानां) रागद्वेषविमोहका (असभव) असमय (अस्ति) है (तत) इस कारण से (एव) ही (अस्य) इस ज्ञानी के (ते) व राग द्वेष मोह (हि) निश्चय से (वधस्य कारण न मति) वध का कारण नहीं होता ॥७॥

(वसततिलका) १०

अथास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिन्ह—
 मैकाग्र्यमेव कलयन्ति मदेव ये ते ।
 रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः—
 पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥८॥

अन्वयाथ—(ये) जो शनी (शुद्धनय) शुद्ध नय को (अभाग्र्य) एकाग्र कर (समैव) निरन्तर (उद्धतबोधचिह्न) प्रगट हो गया है शान मयी निद्रा जिसका नाम (महाप्रसन्न) एकाग्रता को (कलयन्ति) धारण करते हैं (तेषां) वे ही (रागादिमुक्तमनसः) रागादि से शून्य चित्त वाले (भवन्तः) होते हैं (बन्धविधुर) बन्ध से रहित (समयस्य) समय के (सारं) सारको (सततं) हमेशा (पश्यन्ति) देखते हैं ॥८॥

(वसततिलका) १०१

प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु—
 रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः ।
 ते कर्मवधमिह विभ्रति पूर्ववद्ध—
 द्रव्यासर्वे कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥९॥

अन्वयाथ—(ये) जो शनी (शुद्धनयतः) निश्चलन अथवा शुद्धनय से (प्रच्युत्य) गिरकर अथवा झुटकर (विमुक्तबोधाः) निःशून्य होते हैं (पुनरेव) फिर से (रागादियोग) रागादि के सम्बन्ध का (उपयान्ति) प्राप्त करते हैं (ते) वे (इह) इस लोक में (पूर्ववद्धद्रव्यासर्वे) पूर्व

भोग हुए द्रव्यों से (कृत्रिचित्रमिन्द्रियालम्) किया गया है
 विभिन्न प्रकार का विस्मय मनुज जिसमें ऐसे (कर्मवचम् मिश्रति) कर्म
 वच को धारण करते हैं ॥६॥

(અનુષ્ટુપ) ૧૨૭

इदमेवात्र तात्पर्यं हेय शुद्धनयो न हि ।

नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्यागाद्वन्ध एव हि॥१८॥

अन्यथा—(हि) निश्चय से (शुद्धनय) शुद्धनय (हेर) होने
 पाय (न अस्ति) नहा है (इत्) यह (एव) हा (अत्र) यह निश्चय
 अस्ति) अभिप्राय है (हि) क्योंकि (तत्स्यागात्) उस शुद्ध के
 लाइने से (बंध नास्ति) कमरध नहा होता है (तत्स्यागात्) तत्
 निश्चयनय के छोड़ने से (बंध) पर (अस्ति एव) हा

(शास्त्रलविक्रीडित) १२३

धीरोदारमहिम्ननादिनिधने बोधेन्द्रिः ।

त्याज्य शुद्धनयो न जातुकृतिभिर्ऋग्ऋणैश्च

तत्रस्था स्वमरीचिक्रमचिरात्तु निर्वद्वहिः ।

पूर्णं ज्ञानधनोद्यमैरुचल पश्यन्नुन्नं मयः २

शुद्धनय (चातु) कभी मा (त्याज्य) छोड़ने योग्य (न अस्ति) नहीं है
 (तत्रस्था) उस अग्निद्वय चक्र में रहने वाले चानी पुरुष (वहि निर्यन्त)
 वाक्ष्यमाणों में धूमने वाले (स्वमरोचिचक्रं सहस्रं) अपने शरीर विचार
 को समझ कर (पूर्ण अवलंब) परिपूर्ण निश्चय (ज्ञानघनौघ मय शांत)
 ज्ञानरूप के समूह रूप एक शान्तमय रूपी (मह) तब को (अपिरात्र
 पश्यति) नवान् देखते हैं ॥११॥

(मन्त्राज्ञा) १-४

रागादीना भगिति विगमात्मवर्तोऽध्यात्मवाणां
 नित्योद्योतकिमपि परम वस्तु सम्पश्यतोऽन्त
 स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा—
 नालोकान्तादवलमतुल ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(रागादीना आत्मवाणा भगिति) रागादि आत्मवा
 शान ही (मवेत) मन तरफ से (विगमात्) दूर है ज्ञान के कारण
 (नित्योद्योत) सदा प्रकाशमान (किमपि परम) किसी भी भेद (वस्तु
 पदार्थ को (अन्त) अन्तर्गत में (सम्पश्यत) देखने वाले शरीर के
 (स्फारस्फारैः) अनन्तानत (स्वरसविसरैः) अपने चैतन्य रस के विस्तार
 में (मन्त्रभावात् आलोकान्तात्) समस्त पदार्थों का लोभ पर्य
 (प्लावयत्) प्रकाशित करता हुआ (अवलमतुल) अवलम्बित
 (एतत् ज्ञानमुन्मग्नम्) यह ज्ञान प्रगट हुआ है ॥१२॥

॥ अथ सगराधिभार लिख्यते ॥

(शादूर्लविब्रीडित) १-४

आससारविरोधिमवरजयैकान्तावलिप्तास्रव
न्यक्कारात्प्रतिलब्धिनित्यविजयसम्पादयत्सवरम्
व्यावृत्तपररूपतो नियमित सम्यक् स्वरूपे स्फुरत्
ज्योतिश्चिन्मयमुज्ज्वलनिजरसप्राग्भारमुज्जृम्भते

अन्वयाथ—(आससारविरोधिसगरजयैकान्तावलिप्तास्रवन्य
क्कारात्) अनादि मग्न से विरोध करन वाले मग्न का जय से एकात
कर स मग्न को प्राप्त हुए आत्मन के तिरस्कार करन से (प्रतिलब्धनित्य
विजय) प्राप्त कर लिया है हमशा की जीत का जिने ऐसे (सर्व
संपादयत्) सवर को प्राप्त कराना हुआ (पररूपत व्यावृत्त) पर द्रव्य
से प्रथक (स्वरूप) निरूप्य से (सम्यक्) मने प्रकार से (नियमित)
निबिड (उज्ज्वल) निमल (निजरसप्राग्भार) आभारन का है शक्त
विमल ऐसे (चिन्मय) चैतन्य स्वरूप (स्फुरज्योति) स्फुरगयमान प्रकाश
(उज्जृम्भते) उज्य को प्राप्त हो रहा है ॥१॥

(शादूर्लविब्रीडित) १-६

चैद्रूप्य जडरूपता च दधतो कृत्वाविभाग द्वयो-
रन्तर्दार्ढ्यदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च ॥
भेदज्ञानमुदेति निर्मलमिदं मोदध्वमभ्यासिता ।
शुद्धज्ञानधनौधमेकमधुनासन्तोद्वितीयच्युता ॥

अन्तरा—(चेष्टारूप) चेष्टारूपता को (च) और (जड़रूपता) अचेतनरूपता को (दधतो) धारण करने वाले 'द्वयो' दोनों व (अन) अन्तरा में (गुरुणादारणेन) भयंकर विचारण से (परित) सरथा (ज्ञानस्य) ज्ञान के (च) आर (रागस्य विभागा) राग के विभाग को (कृत्या) करके (निर्मलभेदज्ञान) निर्मल भेद ज्ञान (उदेति) उग्य को प्राप्त होता है (इ सता, हे सज्जना (मूय) तुम सब (द्वितीयधुना) पर एगर्थ से प्रवृत्त हुए (अधुना) इस समय (एव) अद्वितीय (शुद्धज्ञान धनौघम्) शुद्धज्ञान जन समूह रूप (इदं) इस वेद ज्ञान को (अभ्यासिता मोक्षधम्) प्राप्त हुए आनन्दित हो ॥२॥

(मालिनी) १२७

यदिकथमपि धारावाहिना बाधनेन ।

ध्रुवमुपलभमान शुद्धमात्मानमास्ते ॥

तदयमुदयदात्माराममात्मानमात्मा ।

परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

अन्वया—(यन्) यन् (धारावाहिना बाधनेन) धारावाही नन से (कथमपि) किन्ना भी तरह (ध्रुव) । अथन (शुद्ध आत्मान) शुद्ध आत्मा को (उपलभमान) प्राप्त करता हुआ (आत्मा आस्ते आत्मा हो (तत्) तो (अथ आत्मा) यह आत्मा (आत्मारामम्) आर्मीक रमण की (उदयन्) प्रगल्भ करने हुए (परपरिणतिरोधान्) परपरिणति व निरोध न (शुद्धे आत्मान एव अभ्युपैति) शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है ॥३॥

(मालिनी) ८२८

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या ।

भयतिनियतमेवा शुद्धतत्त्वोपलम्भ ॥

अचलितमसिलान्यद्रव्यदूरे स्थिताना ।

भवति सति च तस्मिन्नक्षय कर्ममोक्ष ॥४॥

अन्वयाय—(भेदविज्ञानशक्त्या) भेद विज्ञान की शक्ति से (निज महिमरतानां) अपनी महिमा में लीन (मेवा शुद्धतत्त्वोपलम्भ) इन पुरुषों के शुद्ध तत्त्व का प्राप्ति (नियत) निश्चिन्त रूप से (भवति) होती है (अचलितमसिलान्यद्रव्यदूरे) सम्पूर्ण अन्य द्रव्यों से प्रथम (स्थिताना) स्थित रहने वाले इन पुरुषों के (अचलित भवति) निश्चलता होती है (तस्मिन् सति) उस निश्चलता के होने पर (कर्ममोक्ष अक्षय भवति) कर्मों का निरास अत्रिनाशी होता है ॥४॥

(उपपत्ति) १-६

सम्पद्यते सवर एव साक्षात्—

शुद्धात्म तत्त्वस्य किलोपलभात् ।

स भेदविज्ञानत एव तस्मात्—

तद्भेदविज्ञानमर्तावभाव्यम् ॥

अन्वयाय—(किल) निश्चय से (शुद्धात्मतत्त्वस्य) शुद्ध आत्मात्मा के (उपलभात्) प्राप्त होने से (साक्षात्) प्रत्यक्ष रूप से (सवर एव) मंत्र ही (सम्पद्यते) उपलब्ध होता है (स) वह सवर (भेदविज्ञानत) भेद विज्ञान से (एव भवति) हा होता है (तस्मात्) इस कारण से

(भेद विज्ञानम्) भेद विज्ञान (अतीन्द्र) अतिशय रूप से (भाज्य)
होना चाहिये अथान् माना चाहिये ॥५॥

(अनुष्टुप) १३०

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।

तावद्यावत्पराच्छ्युतः ज्ञान ज्ञानेप्रतिष्ठते ॥६॥

अवयवाध—(०६) यह (भेदविज्ञान) भेद विज्ञान (अच्छिन्न
धारया) निराल धाराप्रवाह से (तावत्) तब तक (भाज्यम्) माना
चाहिए (यावत्) जब तक (ज्ञान) ज्ञान (परात्) पर पत्ता से (च्युतः)
हटकर (ज्ञान) ज्ञान में (प्रतिष्ठते) स्थित हो ॥६॥

(अनुष्टुप) १३१

भेदविज्ञानत मिद्धा सिद्धा ये किल केचन ।

तस्यैवाभासतो वद्धा वद्धाः ये किल केचन ॥७॥

अवयवाध—(किल) निश्चय से (ये) ना (केचन) कोई (सिद्धा)
सिद्ध हुए हैं (ने भेदविज्ञानत) वे भेद विज्ञान ॥ (मिद्धा) मिद्ध
हुए हैं (किल) निश्चय से (ये) ना (केचन) कोई भी (वद्धा) बद्ध
(त) व (तस्य) उस भेद विज्ञान के (अभासतो) अभाव से (अप्य) भी
(वद्धा) बद्ध हैं ॥७॥

(मदाका ता) १३२

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धनतोपलभात् ।

रागग्रामप्रलयरुणात्कर्मणा सवरेण ॥

विभ्रतोप परमममलालोकमम्लानमेक ।

ज्ञान ज्ञाने नियतमुदित शाश्वतोद्योतमेतत् ॥८॥

अवयव—(भेदज्ञानोच्छलनफलनात्) भेद ज्ञान के प्रकाश को धारण करने से (शुद्धतत्त्वफलमात्र) शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति से (राग प्राप्तप्रलयपररणात्) राग समुत्पत्ति के निरास करने से (कमला सधरेण) कर्मा के संसर से (पर) ध्ये (सोच) मंत्रा को (विभ्रत) धारण करना हुआ (अमलालोक) निमज है आलोक त्रिमका (शाश्वतोद्योतम्) निमज है प्रकाश त्रिमका (न्यभूतं पेना (अम्लान) उदित (एतत्) यह (एक ज्ञान) एक ज्ञान (ज्ञान) जा मे (नियत) निश्चित (उदित) प्रकाश हुआ है ॥८॥

॥७॥ अथ निर्नराधिराग लिख्यते ॥

(शार्दूललिपीवित्) १२३

रागाद्यास्ररोधतोनिजधुरान्धृत्वापर सप्त

कर्मागामिममस्तमेभरतो दूरान्निरुन्धन्स्थित

प्राग्बद्धतुतदैव दग्धमधुना व्याजृम्भतेनिर्जरा ।

ज्ञानज्योतिरपात नहि यता रागादिभिर्मूर्च्छति

अवयवार्थ—(पर) ध्ये (मय) संसर (रागाद्यास्ररोधत) राग आदि आस्ररा के निरोध से (निजधुरा) अपनी शक्ति को (वृत्त्या) धारण कर (आगामि) यदि य मैं आने जाने (समस्त) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म को (भरत) अपना शक्ति के द्वारा (दूरान्धृत्वा) दूर से ही (निरुन्धन्) रोकना हुआ (स्थित) स्थित (अस्ति) है (निर्नरा) निर्जग (अधुना)

नम समय (प्राग्यद्ध) धृम म बाध दुष्ट (तन्नेव) उमा कम ममूर वा (दग्ध)
नाश करने के निष्ठ (व्यानम्भते) तपर हा रही है (यत) क्योंकि
(रागादिभिः) रागद्वेषादि से (अपायुत) प्रथक हृद (ज्ञानज्योति हि)
नान्मयी ज्योति निश्चय से (रागादिभिः न भूच्छति) रागादिमा से निम्न
नहीं होती ॥१॥

(अनुष्टुप) १३४

तज्ज्ञानस्यैव सामर्थ्यं विरागस्यैव वा किल ।
यत्कोऽपि कर्मभिः कर्म भुजानोऽपि न वध्यते । २

अन्वयाय—(यत्) जो (कर्म) कर्म को (भुजान) भोगता हुआ (अपि) भी (कर्मभिः) कर्मों से (न वध्यते) नही बधता है (सत्) वह (ज्ञानस्यैव) ज्ञान की ही (वा) अथवा (विरागस्यैव) विरागता की ही (सामर्थ्यं अस्ति) शक्ति है ॥२॥

(श्लोद्धता) १३५

नाश्नुते विषयसेवनेऽपियत्स्य फलविषयसेवनस्य ना
ज्ञानवैभवविरागतावलात्सेवकोऽपि तदसावसेवक

अन्वयाय—(यत्) जो (ना) मनुष्य (विषयसेवनऽपि) विषय के सेवन में लगा हुआ भी (विषयसेवनस्य) विषय सेवन के (म्ह) करने (फल) फलमें (न अश्नुते) नहीं भोगता है (तत्) तो (असौ) वह (ज्ञानवैभवविरागतावलात्) ज्ञान के वैभव और विरागता के बल से (सेवक अस्ति) विषय का सेवक होता हुआ भी (असेवक अस्ति) विषय का सेवन करने वाला नही है ॥३॥

(समाश्रान्ता) १३८

सम्यग्दृष्टिर्भवतिनियतज्ञानवैराग्यशक्तिः ।

स्ववस्तुत्वं कलयितुमयस्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ॥

यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वपरं च ।

स्वस्मिन्नास्ते विरमतिपरात्मवर्तोरगयोगात् ॥४॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दृष्टे) सम्यग्दृष्टि जीव के (नियत) निश्चय वा (ज्ञानवैराग्यशक्ति) ज्ञान और विरागता की समर्थ (भवति) होता है (यस्मात्) क्योंकि (अयं) यह सम्यग्दृष्टि (इदं) अपने (वस्तुत्वं) तथा स्वरूप को (कलयितुं) सम्पादन करने के लिए (स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या) अपने स्वरूप की प्राप्ति और पर रूप की मुक्ति से (इदं) इस (व्यतिकर) में को (तत्त्वतः) परमाथ से (इदम्) अपने को (च) और (पर) परमा (ज्ञात्वा) जानकर (स्वस्मिन्) निम्ने (आस्त) स्थित होता है (परात्) पर परमा से (सर्वतः) सब तरह (रागयोगात्) राग के योग से (विरमति) दिरक होता है अथवा प्रथक् होता है ॥४॥

(समाश्रान्ता) १३७

सम्यग्दृष्टिस्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या-

दित्युत्तानोत्पुलकत्वदना रागिणोऽयाचरन्तु ।

आलम्ब्यन्ता समितिपरता ते यतोऽद्यापि पापा-

आत्मानात्मावगमविरहात्मन्तिसम्यक्त्वरिक्ता ॥५॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं (इदम्) मैं (सम्यग्दृष्टि) सम्यग्दृष्टि (अस्मि) मैं (अयं) मैं (यदं) मैं (जातु) कभी भी (मे) मेरे (न स्यात्) नहीं (अयं) मैं (यदं) मैं (जातु) कभी भी (मे) मेरे (न स्यात्) नहीं

नहा हो समता है (इति) इस प्रकार (उत्तानोत्पुलकप्रदना) अदकार से उत्तत और रोमाञ्चिन हो गया हं मुल्य और शरीर निर्हास ऐमे (ने) व (रागण) रागाञ्जन (अपि) भी (आचरन्तु) महाभारत का पालन कर और (समितिपरता) समितियों में तत्परता का (आलम्ब्यता) आलम्बन करें (यत) क्योंकि (पापा) पापी पुरुष (अद्यापि) आज भी (आत्मानात्मायगमयिरहात्) चेतन और अचेतन के ज्ञान से शून्य होने से (सम्यग्दर्शनं सति) सम्यग्दर्शन से शून्य हं ॥१५॥

(महाभारत) १३८

आससारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता ।

सुप्तायस्मिन्नपदमपद तद्विवृष्यमन्धा ॥

एतैतेत पदमिदमिद यत्र चैतन्यधातु ।

शुद्धः शुद्धः स्वरसभरत स्थायिभावत्वमेति ॥५॥

अन्वयार्थ—(हे अन्धा) हे अज्ञानियो (अमी) य (रागिण) रागी पुरुष (प्रतिपद) पद पद पर (आससारात्) अनारि स्मार से (यस्मिन्) जिस पद में (नित्यमत्ता) हमेशा से उन्मत्त हं और (सुप्ता) सोये हुए हं (हि) निश्चय से (यूय) तुम लोग (तत्) उस पद को (अपद) अरुद (अपद) अपद (विवृष्य) समझो (अत) इसलिए (यूय) तुम लोग (इदम् इदम्) इसी पद (पद) पदों (एत एत) प्राप्त करो प्राप्त करो (यत्र) जिस पद में (शुद्ध शुद्ध) शुद्ध शुद्ध (चैतन्य धातु) चैतन्य द्रव्य (स्वरसभरत) अपने के मार से (स्थायी भावत्व एति) स्थिरता को प्राप्त करता है ॥६॥

(अनुादुष) १३६

एकमेव हि तत्स्वाद्य विपदामपद पदम् ।

अपदान्येव भासन्त पदान्यन्यानि यत्पुर ॥७॥

अन्वय—(यत्) जो (पद) पद (विपदा) विपदा का (अपद)
पद तथा (अस्ति) है (हि) निश्चय से (तत् पद) वत् ही (एव)
एक पद (स्वाद्य) स्वाद्य लेन योग्य है (यत्पुर) जिसके सामने (अपदानि
पदानि) दूसरे पद (अपदानि एव भासन्त) अपद रूप ही मान्य
होते हैं ॥७॥

(शार्दूलनिब्रीडित) ८०

एक ज्ञायकभावनिर्भरमहाम्बाद समामादयन्
स्वादन्द्वन्द्वमय विधातुममह स्वावस्तुवृत्तिविदन् ।

आत्मात्मानुभवानुभावविवशोभ्रस्यद्विशेषोदय

सामान्य कलयत्किलैष सकल ज्ञान नयत्येकता ।=

अन्वय—(अय) यह (आत्मा) आत्मा (ज्ञायकभावनिभर
महाम्बाद) ज्ञायक भाव ॥ परिपूर्ण मान् स्वाद्य वाले (एव) एक
अथवा अथाधारण स्वर को (समासादयन्) संशान करना हुआ (भ्या)
अनी (वस्तुवृत्तिविदन्) वस्तुवृत्ति को जानता हुआ (द्वन्द्व) दो दो
रूप के (विधातु असह) करने में अशक्य है (आत्मात्मानुभवानु
भावविवश) अपने आत्मानुभव के प्रभाव में पराधीन (एव विशेषोदय)
यह आत्मा विशय उदय को (अस्यत्) गान्ध करने वाले और (सामान्य)
ज्ञान उदय को (कलयत्) प्राप्त करना वाले (सकल ज्ञान एकता
किल नयति) समस्त ज्ञान की एकता को निभय ॥ प्राप्त करता है ॥८॥

(शास्त्रलविव्रीडित) १४१

अच्छाच्छा स्वयमुच्छलन्ति यदि मा मवेदनव्यक्तयो
 निष्पीतासिलभावमडलरमप्राग्भारमत्ता इव ।
 यस्याभिन्नरम स एष भगवानेकोऽप्यनेकीभवत् ।
 वलगत्युत्कलिकाभिरद्भुतनिधिश्रैतन्यरत्नाकर ॥

अन्वयाय—(यत्) जो (इमा) ये (अच्छाच्छा) अनिनिमज्ज
 (निष्पीतासिलभावमडलरमप्राग्भारमत्ता इव) अतिशयरूप से
 सम्पूर्ण पन्थाय समुदाय के रस के अत्यन्त बोध से मत हुए मानो (मवेदन
 व्यक्तय) अद्भुत के भेद (स्वयं) स्वत (उच्छलन्ति) उड़ल रहे हैं (यस्य)
 जिनका (अभिन्नरम) अभिन्न रस रूप (स) वह (एष) यह (भगवान्)
 भगवान् (एक अपि) एक होना हुआ भी (अनेकी) अनेक (भवत्)
 होता हुआ (अद्भुतनिधि) विविध हैं निधिया जिनमें एसा (शैतन्य
 रत्नाकर) शैतन्यरूपी समुद्र [उत्कलिकाभि] उन्नी हुई तरङ्गों से
 (वलगति) उछल रहा है ॥०॥

(शास्त्रलविव्रीडित) १४२

क्लिश्यन्ता स्वयमेवदुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभि
 क्लिश्यन्ताचपरे महाव्रततपो भारेण भग्नाश्चिर ।
 साक्षान्मोक्षइदनिरामयपदमपेक्षमानस्वयम्
 ज्ञान ज्ञानगुण विना कथमपि प्राप्तु चमन्ते न हि ॥

अन्वयार्थ—(कोपि) कोई भी (दुष्करतरं) अति कठिन (मोक्षो
 न्मुखैः) मार्ग से (कर्मभि) कर्मों से अथवा क्रियाओं से (स्वयमेव)

शुभ ॥ (किल्बिषता) क्लेश ॥ प्रातः कर (पर) दूमे (महाप्रतनपो
भारेण) महाज्जता के और तपश्चरण के भार म (चिर) निराल नर
(भगता) पीड़ित दुः (किल्बिषता) दुःख हा (इत्) यह (निरामयपद)
व्यापि रहित स्थान (स्वयं मयेन्मान) शुभ अनुनर म आ ग्ना (ज्ञान
साक्षात् मोक्ष अस्ति) नन मान्त् मोक्ष है (ज्ञानगुण विना)
ज्ञान गुण के विना (ज्ञान) ज्ञान का (प्राप्नु) प्राप्त करने क लिए (हि)
निश्चय ॥ (कथमपि) किन्ना भी प्रकार म (न क्षम ते) करने महा हा
करते हैं ॥ १० ॥

(द्रुतविलम्बित) १४३

पदमिदं ननु कर्मदुरामद—

सहजबोधकलामुलभ किल ।

तत इदं निजबोधकलावलात्—

कलयितुं युतता सततं जगत् ॥११॥

अन्यथा—(इत्) यह (पत्) ज्ञानरूप पत् (ननु) निश्चय से (कर्म
दुरामद) कर्मों के द्वारा दुःखन ह (किल सहजबोधकलामुलभ)
किन्तु स्वाभाविक ज्ञानरूप कला से मुलभ है (तत इदं निजबोधकला-
वलात्) इसलिए इस आत्मज्ञान को अपना ज्ञानरूप कला क बल स
(कलयितुं जगत् सततं युतता) प्राप्त करने क लिए सगार निरन्तर
यत्न करे ॥११॥

(उपजाति) १४४

अचिन्त्यशक्तिं स्वयमेव देव—

श्चिन्मात्रचित्तामणिरिव यस्मात् ।

सर्वार्थमिद्धात्मतया विधत्ते—

ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १२ ॥

अन्यथा—(यस्मान् अधिक-त्यशक्ति) किम काङ्क्षे म अनित्याय है सामान्य त्रिमयी ऐसा (चिन्मात्रचित्तामसि) चैतन्यरूप चित्तामसि (एव) हा, स्वयमेव) रु हा (देव अग्नि) देव दे (ज्ञानी सर्वार्थ सिद्धात्मतया) अपनी सम्पूर्ण प्रयोजनाओं के सिद्धरूप हा जान से (अन्यस्य परिग्रहण किं विधत्ते) परंपरा के ग्रहण करने से क्या करेगा अधात् रुख भी रहा ॥१२॥

(वसन्ततिलका) १४४

इत्थ परिग्रहमपास्य ममस्तमेव—

सामान्यत स्वपरयोरनिवेकहेतु ।

अज्ञानमुज्झितुमना अधुनात्रिणेपा—

द्यूयस्तमेव परिहर्तुमय प्रवृत्त ॥१३॥

अन्यथा—(इत्थ सामान्यत) इस प्रकार सामान्यरूप म (ममस्त एव परिग्रहम् अपास्य) महा परिग्रह का छोड़ कर स्वपरयो अविनेकहेतु) अपने और परके अज्ञान के हेतु (अज्ञान उज्झितुमना) अज्ञान को छोड़ने का है चित्त किमहा ऐसा (अयं यह ज्ञाना (अधुना त्रिणेपात्) इस समय विशेषरूप से (भूय त एव परिहर्तुम् प्रवृत्त) फिर उमा ही परिग्रह का छोड़ने के लिए तत्पर हुआ है ॥१३॥

(स्यामता) १४६

पूर्ववद्धनिजकर्मविपाकाद्—

ज्ञानिनो यदि भवत्युपभोग ।

तद्भवत्वथ च गगवियोगा—

न्नूनमेति न परिग्रहभावम् ॥१४॥

अन्वयाथ—(ज्ञानिन यन्) जना क यन् (पूर्वरुद्धनिवर्तनं
रिपाकान्) पुत्र के बंध हुए अपने कर्मों के फल से (उपभाग भवति)
उपभाग होता है (तर्हि तद् भवतु) तो वह हो (सगवियोगान्नून)
सग के विभाग से निश्चय न उन् उपभोग (परिग्रहभाव न ऐति परिग्रह
पन को नहीं प्राप्त होता है ॥१४॥

(म्यागता) १४७

वेद्यपेदकप्रिभावचलत्वा—

द्वेद्यते न सलु काचितमेव ।

तेन काजति न किंचन विद्वान्—

मर्वतोऽयतिविरक्तिमुपैति ॥१५॥

अन्वयाथ—(वेद्यपेदकप्रिभावचलत्वात्) वेद्य और अवेद्य का
भाव चलन होने से (सलु विद्वान् काचितमेव) निश्चय न जना पुत्र
इच्छित स्तु का है (न प्रद्यते) नही जानता है (नन विद्यन न काजति)
तिस कारण से निम्न भी स्तु का नही जानता (मवते अपि नव
तन् मे भी (अतिविरक्ति उपैति) अतः वंगम्य का प्राप्त करना ॥१५॥

[म्यागता] १४८

ज्ञानिनो न हि परिग्रहभाव—

कर्मरागरसरिक्तयेति ।

रंगयुक्तिरकषायितवस्त्रे—

म्वीकृतैः हि वहिलुं ठतीह ॥१६॥

अन्वयाथ—(ज्ञानिन कर्म) ज्ञान की क्रिया (रागरमरित्तया) रागरूपी रम से रहित होने के कारण (परिमहभाव न एति) परिग्रहपन को नहीं प्राप्त करता है (रंगयुक्ति) राग की योजना अर्थात् सम्बन्ध (अकषायितवस्त्रे स्वीकृता) कषायलेपन से रहित वस्त्र में (हि) निश्चय से (इह) यत्र म (रहि एव) यत्र ही (लुठति) लोन्ती = ॥

ज्ञानवान्स्वर्गमतोऽपियत स्या—

त्मर्गरागरमवर्जनशील ।

लिप्यते सकल कर्मभिरेव —

कर्ममभ्यपतितोऽपि ततो न ॥१७॥

अन्वयाथ—(यत ज्ञानवान्) जिन कारण से ज्ञानवान् (स्वर्गमत अपि) आधिकार्य में भी (सर्वरागरमवर्जनशील) समस्त रागरूपी रम से रहित स्वभाववान् (अस्ति) है (तत) इस कारण से (एव) यह ज्ञानी (कर्ममभ्यपतित अपि) कर्म के मय में पड़ा हुआ भी (सकलकर्मभि न लिप्यते) समस्त कर्मों में लिपित नहीं होता है ॥१७॥

(शादूलप्रिकाटिन) १४०

यादक्तादगिहाम्नि तस्य वगतो यस्य स्वभावो हियः
कतुर्नैव कश्चिनापि हि परे रन्यादृशः शक्यते ।

अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेत्ज्ञानं भवेत्मततमं
ज्ञानिन् भुङ्क्ष्वपरापराधजनितो नास्तीद्वयधस्तव।

अवयव—(इह) इस लोक में (यस्य) जिस मनु का (यशत)
अधीनता में (य) ज्ञा (यादृक् स्वभाव अस्ति) जैसा स्वभाव है
(तस्य स्वभाव) उस मनु का स्वभाव (तादृक्) वसा ही है (हि)
निश्चय से (परै) दूसरा के द्वारा (तप) यन् स्वभाव (अन्यथा)
अन्य प्रकार का (कथंचन अपि कतु न शक्यते) किसी भी तरह में
करने में समर्थ नहीं है (हि अज्ञान कदाचन अपि) निश्चय से अज्ञान
किसी भी तरह में (ज्ञान न भवत्) ज्ञान नहीं हो सकता (हि ज्ञानिन्)
हे ज्ञानी पुण्य (त्वम्) तू (मतततम् भवत्) निरंतर विद्यमान (ज्ञान
भुङ्क्ष्व) ज्ञान का आस्वादन कर (इह) इस लोक में (तव) तेरे
(परापराधजनित) परके अयोग्य में पैदा हुआ (यद्य नास्ति)
बंध नहीं है ॥ १८ ॥

(शाद्वलत्रिकीर्णित) १४१

ज्ञानिन्कर्मनजातुकर्तुमुचितकिंचित्पथाप्युच्यते
भुङ्क्ष्वेहन्तनजातु मे यदि परदुर्भुक्तएवामिभो
वध स्यादुपभोगतो यदि नतत्किञ्चामचारोऽस्तिते
ज्ञानसन्धेयवन्धमेव्यपरथा स्वस्यापराधादुध्रुवम् ॥

अवयव—(हि ज्ञानिन्) हे ज्ञानी (जातु) कभी भी (त्वया
कर्म कर्तुं) तब द्वारा कर्म करना (उचित न अस्ति) योग्य नहीं है
(तथापि त्वया) ता भी नरे द्वारा (उच्यते) कहा जाता है (यन्
अहं किंचित् भुङ्क्ष्वे) कि मैं कुछ भोगता हूँ (म परं जातु न) मेरे पर

वस्तु कदाचित् नही है (हन् यदि) एव है यदि (ते परं नास्ति)
 तर् पर वस्तु नही है (नहिं भो) तो हे श्रुता (त्व) तू (दुर्मुक्त एव
 अस्मि) तू आहारी ही है (यदि) यदि (उपभोगत ते बंध न
 स्यात्) पर तू य के उपभोग से तर् बंध नहीं है (नत्) तो (ते काम
 धार किं अस्ति) तेरे " आहुता भोग क्यों है (त्व ज्ञानमम रस)
 तू " ज्ञान देता हुआ आत्म स्वरूप में निवास कर (अपरथा स्वस्य
 अपराधात् ध्रुव बंध अपि) अथवा अरने अपराध से निश्चिन्ना बंध
 का प्राप्त होगा ॥ १६ ॥

(शार्ङ्गलविक्रीडित) १५०

कर्तारस्त्रफलनयत्किंलवलात्कर्मैवनोयोजयेत्
 कुर्वाण फललिप्सुरेव हि फलप्राप्नोति यत्कर्मण
 ज्ञानसस्तदपास्तरागरचना नो बध्यते कर्मणा
 कुर्वाणोऽपि हि कर्मतत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥

अन्वयात्—(किल कर्म एव) निश्चय त कर्म " (यत्) जिस
 कारण से (स्वफलेन कर्तार) अरने फल के साधकता का (यत्नान्
 ना योजयेत्) उस पुत्रक मुक्त नही करता है श्रार (यत् कुर्वाण फल
 लिप्सु) जिस कारण से कर्म का कर्ता हुआ फल से चान्न ला (एव)
 हा । नि) निश्चय से (कर्मण फल प्राप्नोति) कर्म के फल को प्राप्त
 करता है (नत्) समलिय (अपास्तरागरचना) ज्ञान दिया है
 राग का रचना को ज्ञान एवा (ज्ञान भवत्) जनक होने हुआ श्रार
 (कर्म कुर्वाण अपि) कर्म का कर्ता हुआ भी (तत्फलपरित्यागैक
 शील) उस कर्म के फल से चान्न का है एक स्वभाव जिसका ऐसा
 (मुनि कर्मणा नो बध्यते) मुनि कर्म से नही बधना है ॥ • ॥

(शार्दूललिपिभाटिन) १७३

त्यक्त येनफल म कर्म कुरुते नेति प्रतीमा वय
 किंत्वस्यापि कुतोऽपि किंचिदपितत्कर्माग्नेनापतेत्
 तस्मिन्नापतिते त्वकम्पपरमज्ञानस्वभावेस्थितो
 ज्ञानोकिं कुरुतेऽथकिं न कुरुते कर्मेति जानाति क

अन्वय—(येन फलं त्यक्तं) जिन कम कन का काइ गिया है
 को (कर्म) कन का (कुरुते) काना है (इति) एमा जानका (यय
 न प्रतीमा) हम अज्ञान नान कान (किन्तु) पान्तु (अथ) हम
 के (कुत) कही न । किंचित् अपि कमाधरान) कुछ ना कम क
 कय क भिना (तत् अपतत्) व, कम आस्थान हुआ है (तस्मिन्
 आपतित) हम कम के आस्थान हान पर (ज्ञाती) यह जानी (अथ
 कपरमज्ञानस्वभावे स्थित) निश्चय अज्ञान रूप स्वरूप में
 स्थित हुआ (अथ) हमने का (कि कम कुरुते) हम कम को काना
 है (कि न कुरुते) जिन कम का नान काना है (इति ए जानाति)
 हम जान को कीन जान गइया है ॥ १७ ॥

(शार्दूललिपिभाटिन) १७४

सम्पददृष्ट्य एव माहममिदं कर्तुं क्षमन्ते पर
 यद्वच्चेऽपि पतत्यमो भयत्रलत्रैलोक्यमुक्ताध्वनि
 सर्गमेव निमर्गनिर्भयतया शंका विहाय स्वय
 ज्ञान—मूमवयमोधयपुणं बोधाच्छ्रयते न हि-

अवयाध—(सम्यग्दृष्टय एव) सम्यग्दृष्टि हा (इत् साहस
 पतु) इम माहम हा करने में (परं चामते) अनिशय रूप में हा समर्थ
 होते हैं (यत्प्रभयचलतत्रै लोभमुत्तापवनि) जो भय से चंचल
 तीनों लोक के जीवों में खोटा प्रिया गया है माग त्रिप्ता ऐसे (वस्योपतति)
 वस्त्र के गिने पर (अपि) भा (अमाताय) ये सम्यग्दृष्टि जीव ही
 (निसर्गनिभयतया) स्वाभाविक निर्विकल्पा से (मर्मा शका त्रिहाय)
 मारी शका का छोटा कर (स्वय अवध्यरोधप्रपुष) सुखाधा रहित
 ज्ञानरूप शरीरज्ञान (स्व ज्ञानत) अपनी आत्मा को जानते हुए (हि)
 निश्चय कर (बाधात् नन्ययत्त) ज्ञान से चलायमान नहीं होते ॥ २५ ॥

(शास्त्र लविवर्द्धित) १५७

लोक शाश्वत एक एव सकलव्यक्तो विविक्तात्मन
 चित्तलोक स्वयमेव केवलमय यत्प्रत्यत्येकक
 लोकोयन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तदुभी कुतो
 नि शक मततस्वय स सहज ज्ञान मदा विदति २ :

अन्वय—(एक लोक) यह जीवों का लोक (एक शाश्वत
 सकलव्यक्त) एक नित्य गमस्त एवार्थों में प्रगट है अतः (विविक्ता
 त्मन चित्तलोक) प्रत्येक आत्मा के चैतन्य प्रकाश का (स्वयमेव अय
 एक) स्वय ही यह अनेका (लोकप्रति) अमलात्मन कृता है (अर्थ
 लोक तय अस्ति) यह चैतन्य लोक तय है (अपर लोक तय नास्ति)
 दूसरा लोक तय नहीं है (पर अस्ति) पर है (तस्य तत भी कुत
 भयेत्) दूग जीव के इस कारण से भय करने हा सकता है अर्थात् नही हो
 सकता (स सततं नि शक्ते) यह निरंतर शंका रहित (सहज ज्ञान

सदा स्वयन्विन्दति) स्वभाविक ज्ञान को हमेशा स्वयमेव ही प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

(शास्त्रलविक्रीडित) १५६

एषैकैव हि वेदना यदचल ज्ञान स्वय वेद्यते
निर्भेदोदितमेव वेदकबलादेक सदानाकुले
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो
निशक मतत स्वय स सहज ज्ञान सदा विन्दति

अन्वयाय—(ज्ञानिन) शरी के (हि) निश्चय से (एषा) य
(एषा एक) एक ही (वेदना अस्ति) वेदना है (यत्) जो कि
(निर्भेदोदितमेव वेदकबलात्) अभिरूप म रति हुए वेद वेदक
के बल म (अनाकुलै सदा एक अचल) आकुला सत ज्ञानिया के
द्वारा हमारा एक निश्चल (ज्ञान स्वय वेद्यते) ज्ञान स्व ही जाना जाता
है (अ-यागत-ज्ञाना हि न भवेत्) दूसरों के द्वारा ज्ञान हुआ वे ना
निश्चय से नही होनी है (तत् ज्ञानिन भी कुत भवेत्) इस कारण
शरी के भय कम हो सकता है (स मतत) य शरी निरत (नि-
शक स्वय सहज ज्ञान मत्ता विन्दति) शरी रति हुए स्वाभाविक
ज्ञान को हमेशा प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

(शास्त्रलविक्रीडित) १५७

यत्सन्नाशमुपैति तन्ननियत व्यक्तेति वस्तुस्थिति
ज्ञान सत्स्वयमेव तत्किलततस्त्रातकिमस्यापरै
अस्यात्राणमतो न किंचनभवेत्तद्भी, कुतो ज्ञानिनो
निशक सतत स्वय स सहज ज्ञान सदा विन्दति

अवधार्य—(यत्) ओ वस्तु (मत्) स्वरूप है (तत्) व वस्तु
 (नाश न उपैति) नाश को प्राप्त नहीं होती (इति प्रस्तुतिरिति)
 प्रतीति वस्तु की मयी (नियतव्यक्ता) नियम से स्पष्ट है (ज्ञान स्व
 यमेव सत्) ज्ञान स्वयं ही स्वरूप है (किल) किन्तु से (अस्य)
 इसका (तत्) वह ज्ञान (अपर) दूसरी से (आत) रतित, कि है
 हो सकता है (सत अस्य अपराण विचिन न) इसलिये इस ज्ञान के
 अपराण कुछ भी नहीं है (अत आनिन तद् भुत
 भवेत्) इसलिये ज्ञान के वह अपर भय कम हो सकता है अधीन ना
 हो सकता (स सतत नि शक समन्वय सहज ज्ञान महा विदिति
 वह ज्ञानी अनन्त निशक होना दुआ अपने स्वाभाविक ज्ञान को हमेशा प्रा
 करता है ॥ ५ ॥

(शास्त्रोक्तविराजित) १४८

स्व रूप किल वस्तुनोस्तिपरमागुप्ति स्वरूपेण
 शक्त कोऽपि पर प्रवेष्टुमकृत ज्ञानस्वरूपं च नु
 अस्यागुप्तिरतो न काचनभवेत्तद्भी कुतोज्ञानि
 नि शक सतत स्वयं स महज ज्ञान महा विदतिः

अवधार्य—(वस्तुन स्व रूप किल परमागुप्ति अस्ति) व
 निरूप ही श्रेष्ठ गुण है (स्वरूपेण कोऽपि प्रवेष्टु शक्त न भवे
 वस्तु के निरूप में दूसरी का भी प्रवेश कम व समर्थ नहीं हो स
 (यत्) क्योंकि (अकृत) स्वाभाविक (ज्ञान) ज्ञान (नु) आमा
 (स्वरूप अस्ति) निरूप है (अत अस्य अगुप्ति काचन नापि
 इसलिये इस वस्तु का अपरता को भी नहीं है (अत आनिन तद् भुत
 अभाव में ज्ञान के इस अगुप्ति का भय (भुत भवेत्) कम हो सकता है

अथान् न हो सक्ता (स) वह ज्ञाना (नि शक सन् सतत स्वय
महज ज्ञान सदा विदति) निश्च होता हुआ निरंतर अपने स्वामयिक
ज्ञान का हमेशा प्राप्त करता है ॥ ५६ ॥

(शार्दूलविक्रीडित) १५६

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्राणा किलास्यात्मनो
ज्ञान तत्स्वयमेवशाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचिन् ।
स्यातो मरण नकिंचन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो
ने शक सतत स्वय ममहज ज्ञान सदा विदति ॥

अन्वयार्थ—(ये) जो मनु य (प्राणोच्छेद मरण उदाहरति)
प्राणों के विनाश को मरण कहते हैं (अस्य आत्मन प्राणा किला
ज्ञान) हम आत्मा के प्राण तो निश्चय से जान है (तत्) यह ज्ञान
(स्वयमेव शाश्वततया जानुचित नोच्छिद्यते) स्वय ही नित्य होने
से कभी भी नाश को प्राप्त नही होता है (अत तस्य मरणकिंचन न)
इसलिये उस आत्मा का मरण कुछ भी नही है (अत , इसलिये (ज्ञानिन
तद्भी कुतो भवेत्) ज्ञानी के उस मरण का भय कैसे हो सकता है अथान्
नहीं हो सक्ता (भ नि शक सन् सतत स्वय महज ज्ञान सदा
विदति) वह शरी निश्च होता हुआ निरंतर अपने स्वामयिक ज्ञान को
हमेशा प्राप्त करता है ।

(शार्दूलविक्रीडित) १६०

एक ज्ञानमनाद्यनन्तमचल सिद्ध मिलैतत्स्वतो
यावत्तावदिद सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदय ॥

तन्नाकस्मिन्मत्रकिंचनभवेत्तद्भी कुतोज्ञानिनो
नि शङ्क मत्तत स्पय म सहज ज्ञान सदा विदति २८

अन्वयाय—(ज्ञान एक) ज्ञान एक है (अनाद्यनन्त अचल)
अनादि है अनन्त है और अचल है (क्लृप्त) निश्चय से (एतत्तत्त्वत्
सिद्ध) यह बात स्वयमेव सिद्ध है इसलिये (यावत्) जब तक (इत्)
यह ज्ञान है (तावत्) तब तक (इत्) यह ज्ञान (सदैव) निरन्तर हा
(हि) निश्चय से (भवेत्) रहना है (अत्र) इस ज्ञान में (द्विती-
योन्य) दूसरे पन्थ का उन्मूलन (न भवेत्) नष्ट हो सकता (तत्)
इसलिये (अत्र) इस ज्ञान में (आकास्मिक किंचन न भवेत्)
अकस्मात् ज्ञान वाला कुछ भी नष्ट हो सकता इसलिये (ज्ञानिन तद्भा-
वुन भवेत्) ज्ञानी के लिये ज्ञान का भय कभी हो सकता अर्थात् नहीं हो
सकता (स सतत नि शङ्क मन् स्वय सहज ज्ञान सदा विदति)
यह ज्ञानी निरन्तर नि शङ्क होता हुआ अपने स्वभाविक ज्ञान को हमेशा प्राप्त
करता है ॥ २८ ॥

(मदाऽऽता) १६१

टकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाज ।

सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकल वनन्ति लक्ष्माणि कर्म ॥

तत्तस्यास्मिन् पुनरपि मनाक् कर्मणो नास्ति वधः

पृथोपात्त तदनुभूतो निश्चित निर्जरैव ॥२९॥

अन्वयाय—(टकोत्कीर्णस्वरसनिचित ज्ञानसर्वस्वभाज) टको-
त्कीर्ण निश्चित ॥ याम ज्ञान रूप सत्य का भागने वाले (सम्यग्दृष्टेः) ॥

मध्यमि के जो (चन्द्रमणि) निष्कृता नि - (मयति) होते हैं वे
(वह) इस लोक में (सफल काम धर्मात्) समस्त काम का नाश करते
॥ (तत्तस्य असिमन्) इसलिए उस मध्यमि के इस लोक में (पुन
मनागपि) फिर थोड़ा सा (कर्मण धर्मनाम्नि) काम का बंध नष्ट होता
(ननुभवत पूर्वापत्त) उस बंधमार के अनुभव में पूरा में गन्ति
हूँ काम (निश्चित निर्भरा हूँ निश्चित रूप में निर्भीक हो जाते हैं ॥१६

(मन्त्रानां) १६०

रुधन्वन्ध नवमितिनिजै मगतोष्टाभिरगै ।
प्राग्बद्ध तु क्षयमुपनयन्निर्जराञ्जृम्भणेन ॥
मध्यगृष्टि स्वयमतिरसादादिमयान्तमुक्त ।
ज्ञानभूत्वा नटति गगनाभोगरग विगाद्य ॥३०

अथवा—(मध्यगृष्टि) मध्यमि जीव (स्वयमतिरसात्) स्वयं अतिरस रूप से । आन्तिमध्यान्तमुक्त) आन्तिमध्य आर अतः स
रहित (ज्ञान भूत्वा) ज्ञान रूप होकर (निजै अष्टाभि अगै) अपन
आग अगां से (मगत सम) मन्ति होता हुआ (इति) इस तरह से
(ननु बंध न धन) नवीन बंध का रास्ता हुआ (तु) और (निर्जरो
जृम्भणेन) निर्जरा की वृद्धि से (प्राग्बद्ध क्षय उपनयन्) पूरा में
वापस गये काम के क्षय को प्राप्त करता हुआ (गगनाभोगरग) आकाश
के मध्य माग रूप रग भूमि में (विगाद्य नटति) प्रवृत्त करके नाचता
है ॥३०॥

॥८॥ अथ वधाधिकार प्रारभ्यते ॥

(शादुल्लिखीक्रीडत) १६३

रागोद्गारमहारसेन सकल कृत्वाप्रमत्त जगत्
क्रीडन्तरसभारनिर्भरमहा नाट्येन वधधुनत्
आनदामृतनित्यभोजि सहजावस्थास्फुटन्नाटयत्
धीरोदारमनाकुल निरुपधि ज्ञान समुन्मज्जति ॥१॥

अन्वयाथ — (रागोद्गारमहारसेन) राग के उच्च रूप महान् रस स
(सकल जगत्प्रमत्त कृत्वा) सम्पूर्ण जगत् का प्रमाणा करने (रसभार
निर्भरमहानाट्येन) रस के भार से भरे हुए महान् नृत्य स (क्रीडन्त)
क्रीड़ा करने वाले (वधधुनत्) वध को कपागा हुआ (आनदामृतनित्य
भोजि) आनन्दरूपी अमृत का निरंतर आनन्द करने वाला (सहजावस्था
स्फुट नाटयत्) अपनी स्वाभाविक प्रकृति का स्वप्न से नन्नाया हुआ
(धीरोदार मनाकुल निरुपधि ज्ञान समुन्मज्जति) धार और
उत्तर प्राकृतिकतद्वि और परिग्रह रहित ज्ञान उच्च का प्राप्त गा है ॥१॥

(पृथ्वी) १६४

न कर्मबहुल जगन्न चलनात्मक कर्म वा ।
न नैककरणणि वा न चिदचिद्वधो वधकृन् ॥
यदैक्यमुपयोगभू समुपयाति रागादिभि ।
स एवाकिल केवल भवति वधहेतुर्नृणाम् ॥२॥

अन्वयाथ — (कर्मबहुल) कर्मरूप पुत्रा से मता हुआ (जगत्
वधहेतु नास्ति) लोक वध का कारण नही है (चलनात्मक कर्मवधहेतु

नास्त) मन उचन काय का पारम्यन्तर्यक्रिया रंग का कारण नहा है
 (तानिस्तरणानि न बहेतु न) आर अनर सग्य प्रगात् इन्द्रिया
 वध का कारण नहा है (चित् आग्नि उच र मृत्मानाति) जेतन और
 अचेतन का घात व र को करने जाला नहा है (यत्) हिउ (य) जो
 (उपयोगभू रागादिभि ऐक्य समुपगानि) ज्ञान मरूप आत्मा
 सादृशां कि साय एकता को प्राप्त जाता है (रिल म गय कयल नृणा
 र्धहेतु भवति) निश्चय म रनी आत्मा नी निष भवतु या क उच का
 कारण है ॥ ॥

(शाङ्ख्यप्रकाशिन) १२४

लोक कर्म ततोऽस्तु मोस्तु चपरिस्पन्दात्मककर्मत-
 तान्यस्मिन्करणानिमतुचिदचिद्व्यापादनास्तुतत्
 रागादीनुपयोगभूमिमनयद ज्ञान भवत् केवल
 वधनेन कुतोऽयुपैत्ययमहो सम्यग्दृगात्माध्रुव ॥३

अन्वयाथ—(तन लोक कर्म) इमालय लोक सम्पन्न रगणाद्या म
 भग हुआ (अस्तु) राने (परिस्पन्दात्मक म अस्तु) मन उचन काय का
 हलन चलन रूप यह योग रहा (तत्कर्म अस्तु) राने ज्ञान भा रहा
 (तानिस्तरणानि मन्तु) व करण भी रह (च) और (तन् चित् आचिद्
 व्यापान्) वह जेतन और अचेतन का घात भा (अग्निमन अस्तु)
 रगमें रहा (अय सम्यग्दृगात्मा रागात्मान् उपयोगभूमि अनयत्)
 यह सम्यग् चि ज्ञान गग द्वेय ज्ञानि को आत्मा में नहा प्राप्त करता हुआ
 (केवल ज्ञान भवत्) निष ज्ञानरूप होता हुआ (कुन अपि धधध्रुव
 न उपैति) किसी भी तरह ॥ उच का निरूप से नहा करता (अने) या
 आशय है ॥ ॥

तथापि न निरर्गल चरितुमिष्यते ज्ञानिनां ।
 तदायतनमेव मा क्लिन्निरर्गला व्यावृत्तिः ॥
 अकामकृतकर्म तन्मतमकारणं ज्ञानिना ।
 द्वयं न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥४॥

अवगाथ (तथापि) अथवा सोने आदि कारणों से रूध नहीं होता
 मिल्नु रागादिरूप बिभ्रत मागों से ही बंध जाता है तो भी (ज्ञानिना
 निरर्गल चरितुं न इष्यते) जानिया को स्वयं आन्तरण करना योग्य
 नहीं है (क्लिन्न) निधन से (सन्निरर्गला व्यावृत्तिः तदायतन एव)
 यह स्वच्छ प्रकृति बंध का हा काग्य है (ज्ञानिना अकामकृतकर्म
 अकारणो भवत) जानिया के बिना इन्द्रिय से किया गया कार्य बंध का
 अकारण माना गया है (हि) निधन से (तत्) ये (द्वय) गेला (जानाति
 च करोति) जानते मा हैं अगर करते मा हैं (किमु) क्या २ गेनों क्रियाएँ
 (न विरुध्यते) भिन्नो को प्राप्त बना गेला अथवा होती ही है ॥४॥

(यस्यार्ततलका) १६७

जानाति य म न करोति करोति यस्तु ।

जानात्यय न खलु तत्किंल कर्मराग ॥

राग त्वबोधमयमध्यसायमाहु—

मिथ्यादृश स नियत स च बन्धहेतु ॥५॥

अवगाथ—(य जानाति) जो जानता है (म करोति न) वह
 करता नहीं है (य करोति स जानाति न) जो करता है २८ जानता

नहीं है (गल्लु) निश्चय मे (अर्थ कमराग) यन् कम का राग है
 (रागान्तु अवोधमय अन्धप्रमाय आहु) गगरो तो अज्ञानम् अन्ध
 राय कहत है (म) यह अन्धप्रमाय (मिथ्यादृश) मिथ्यादृशि बीर के
 (नियत) नियम मे (वधहेतु) ३१ का शास्त्र ॥५॥

(वसन्ततिलका) १६८

मां सदैवनियत भवति स्वकीय—

कर्मोदयान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥

अज्ञानमेतदिह यत्तु परं परम्य ।

कुर्यात्पुमान्मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥६॥

अन्वयाथ—(इह मरणजीवितदुःखसौख्यम्) इस लोक मे
 मरण जीवन दुःख और सुख (सर्वं मन्वेव स्वकीयकर्मोदयात्) सभी हमेशा अज्ञान कम के उत्पन्न मे है (नियत भवति) नियम मे
 होते है (यत्तु) जो लोग यह कहत है कि (परं पुमान् परम्य मरण
 जीवितदुःखसौख्यं कुर्यात्) दूसरे मनुष्य दूसरे मरण जीवन दुःख और
 सुख को यह करता है (एतत् अज्ञान अस्ति) यह अज्ञान है ॥६॥

(वसन्ततिलका) १६९

अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य ।

पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम् ॥

कर्माण्यहं कृतिरसेनचिकीर्षवस्ते ।

मिथ्यादृशो नियतमात्महतो भवन्ति ॥७॥

अन्वयाथ—(ये परम्य मरणजीवनदुःखमौघम्) जो पर के मरण जीवन दुःख और सुख में (परार पश्यति) पर में मित्र हुआ देखते हैं (एतन् अज्ञान अविगम्य) इस अज्ञान में प्राप्ति कर (अहं कृतिरमेन कर्माणि चिकीपत्) अहंकाररूप हम में मरण को दुःख को और सुख को करने का इच्छा करने वाले (ते मिथ्याज्ञा नियत आत्म हतो भवन्ति) वे मिथ्याज्ञि जीवनिम्न में अपना आत्मा का घात करने वाले होय ह ॥७॥

(अनुदुष) १७०

मिथ्यादृष्टे म एवास्य बधहेतुर्विपर्ययात् ।

य एवाध्यवसायोऽयमज्ञानात्मास्य दृश्यते ॥८॥

अन्वयाथ—(अस्य मिथ्यादृष्टे विपर्ययात्) इस मिथ्याज्ञि का विपरीतता से (म एव) वह अध्यसाय ही (बधहेतु) बध का कारण है (अस्य) इस मिथ्याज्ञि का (म एव अध्यवसाय) वह यत् अध्यवसाय निराकृता होने से (अज्ञानात्मा) अज्ञानरूप (एव दृश्यते) हो देखा जाता है ॥८॥

(अनुदुष) १७१

अनेनाध्यवसायेन नि क्लेन विमोहित ।

तत्किञ्चनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मान करोतियत्

अन्वयाथ—(आत्मा) आत्मा (नि क्लेन) निरपेक्ष (अनेन अध्यवसायेन विमोहित) इस अध्यसाय से व्यामोह का प्राप्ति हुआ (तत्किञ्चनापि) वह कोई भी वस्तु (नैवाऽस्ति) नहीं है (यत् आत्मान न करोति) किसी अनेन रूप नहीं करता अतः स्व को अनेन रूप कर लेता ह ॥९॥

विश्वादिभक्तोऽपि हि यत्प्रभावा—

यत्मानमात्माविदधाति विशम् ।

माहैककन्दोऽयवमाय एष—

नास्तीह येषा यतयस्त एव ॥१०॥

अन्वयाथ—(यत्प्रभावात् विश्वात् विभक्त अपि) निम्ने प्रभाव
॥ विश्व प्रथम होता हुआ मा (आत्मा विश्व आत्मान विदधाति)
आत्मा विश्व रूप अवन का कर्ता है (निष्पत्ति माहैककन्द) निश्चय मे
दद मात् हा है एक कारण किमता एमा (अध्ययमाय इह येषा नास्ति)
अयवमाय इस लाव म किन्हे नहीं है (त एव यतय सति) व ही
मुनि है ॥१०॥

(शार्ङ्गलक्ष्मीडित) १७३

मवत्रा यवमानमेवमरिल त्याज्य यदुक्त जिने ।
तन्मन्येयवहारएव निखिलोऽयन्याश्रयस्याजित
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमीनि कम्पमाक्रम्य कि ।
शुद्धज्ञानधनेमहिम्नि न निजेवध्नन्तिमतोवृत्तिम् ॥

अन्वयाथ—(निने मयत्र अग्निल अध्वमान त्याज्य उक्त)
अनन्तर मगान न जा सभी वस्तुओं मे सम्पूर्ण अध्वमान को त्यागने
योग कहा है (तन् अह अयाश्रय निगलताअपि यवहार एव)
उपमें परागित रूप जान सम्पन्न दत्ता हा को (त्याजित) दुष्टा है
(एव मये) इस प्रकार मानता है (तन् अमी स त एक सम्य

गिनश्चय) तो ये मन्त्र पुष्प एक स्मारायान विभय को (एव निष्कम्पम्
 आत्रम्य शुद्धज्ञानघनं निनेमहिम्नि) हा निश्चलरूप में प्राप्त करके
 निमल ज्ञान घनरूप अपनी महिमा में (धृतिम् किं न व्रनति) स्थिरता
 को क्या नष्टा पावन यहा आश्रय है ॥१॥

(उपजाति) १७४

रागादयो वधनिदानमुक्ता—

स्ते शुद्धचिन्मात्र महोऽतिरिक्ता ।

आत्मापरो वा किमु तन्निमित्त—

मितिप्रणुन्ना, पुनरेव माहु, ॥१२॥

अवसाध—(रागादय वधनिदान उक्ता) रागादय आदि वध
 के क्षरण कहे गये हैं (ते शुद्धचिन्मात्रमहोतिरिक्ता) ये रागादि शुद्ध
 चान्त्य रूप तेज त मित्र है (तन्निमित्त आत्मा अस्ति) उन रागादिकों
 का कारण आत्मा है (वा पर किमु) अथवा दूसरा को- पुनः आदि
 फल है (इति) इस प्रकार (प्रणुन्ना) पुनः जाने पर आचार्य (पुन
 एव आहु) फिर एक कहते हैं ॥१२॥

(उपजाति) १७५

न जातु रागादिनिमित्तभाव—

मात्माऽऽत्मनो

तस्मिन्निमित्त

वस्तुस्वभावो—

अन्वयात्—(आत्मा आत्मन रागाग्निनिमित्तभाव) आत्मा
 अपने रागाग्निनिमित्त के माद को (जातु न यानि) क्या भा प्राप्त नहा
 हता (तस्मिन् परमंग एव) एव आत्मा में पर एव का स्थोग ही
 (निमित्तभवति) निमित्त होता है (यथा अर्कमात) जैसे सूर्यमान्त
 माग स्वभाव ॥ तो उध्य नहा है, किन्तु सूर्य के मरध से अमिश्य हा
 गती है (अथ वस्तु स्वभाव) य वस्तु का स्वभाव (एव) ही
 (तावत् उच्यते) निश्चय म एव का प्राप्त हता ॥१॥

(अनुष्टुप) १०६

इति वस्तुस्वभाव स्व ज्ञानी जानाति तेन स
 रागादीन्नात्मन कुर्यान्नातो भवति कारक ॥१४॥

अन्वयात्—(इति ज्ञानी एव) एव तस्मिन् ज्ञानी अपने (वस्तु
 स्वभाव) वस्तु के स्वभाव को (जानाति) जानता है (तेन स) इस
 कारण से वह ज्ञानी (रागाग्निन् आत्मन न कुर्यात्) रागाग्नि को
 अपने नहा करता (अतः कारक न भवति) अतएव रागाग्नि का
 क्या नहीं होता है ॥१४॥

(अनुष्टुप) १०७

इति वस्तुस्वभाव स्व नाज्ञानी वसति तेन स ।
 रागादीन्नात्मन कुर्यादतो भवति कारक ॥१५॥

अन्वयात्—(इति एव वस्तुस्वभाव अज्ञानी न वसति) एव
 अपने वस्तु के स्वभाव का अज्ञानी नहा जानता है (तेन) इस कारण
 (स रागाग्निन् आत्मन कुर्यात्) वह अज्ञानी रागाग्नि का
 अपने करता है (अतः कारक) अतएव रागाग्नि स वता (भवति)
 होता है ॥१५॥

अन्वयार्थ—(रामाणीना नारणाना अन्य अन्य) रामाणि काम्गा
 के रूप को निर्यन्ता प्रक (नारयन्) नाश करता हुआ
 (विनिध वध कार्य अधुना सद्य एव प्रसुद्य) नाना प्रकारके वध
 रूप कार्य को इस समय तकाल ही दूर कर (क्षापतन्मिर) नाश कर
 । या है अज्ञान रूप अधकार को जितन (एतन्मूलान-याति) यह ज्ञान
 रूपी प्रकाश (तद्वन् साधुमग्नद्व तत्पर स्थान) इस तरह में मली भाति
 तत्पर होता है (यद्वन् अस्य प्रसर अपर कोऽपि न आपृणोति)
 जिस तरह में इसके निस्तार का दूसरा वाद भी नही शक सकता है ॥१७॥

॥ ६ ॥ अथ मोक्षाधिकार शारभ्यते ॥

(शिखरण्या) १८०

द्विधाकृत्य प्रज्ञाकचदलनाद्धधपुरुषो ।
 नयन्मोक्षसाक्षान्पुरुष मुपलभैरुनियत ॥
 इदानीमुन्मज्जन्महजपरमानन्दसरस ।
 पर पूर्ण ज्ञान कृतमकलकृत्य विजयते ॥१॥

अदवार्थ—(प्रज्ञाकचदलनात्) प्रज्ञा रूप कृत के द्वारा । नारण
 करने में (यवपुरुषो) उध और आमा को (द्विधाकृत्य) प्रथक कर
 (उपलभैरुनियत) निज रूप की प्राप्ति रूप में निश्चयन (पुरुष
 साक्षान् मोक्ष नयन्) आमा का मानात् रूप में मोक्ष में लेजाना हुआ
 (महजपरमानन्दसरस) स्वर्गात्क उच्छ्र आनन्द रूप में मादन
 (पर) अष्ट (पूर्ण) पण्डित्य (कृतमकलकृत्य ज्ञान) समस्त कार्य
 को कर चुका जान (इदानीम् उन्मज्जन् विजयते) इस समय प्रगट
 होता हुआ अक्षोभ्य रूप में है ॥१॥

प्रज्ञान्छेत्रीशितेय कथमपिनिपुणे पातितासावधानै
सूक्ष्मेऽन्त सधिप्रधे निपतति रभमादात्मकर्मोभयस्य
आत्मानमग्नमत. स्थिरविशदलमद्धाग्निचैतन्यपूरे
वधवाज्ञानभावेनियमितमभित्त कुर्वतीभिन्नभिन्न

अथवा—(सावधानै निपुणै) सावधान निपुण अथवा चतुर
पुण्या न (कथमपि) किन्ना भी प्रसार स (पातिता) डाला गर (शिता) पेनी
(अथ, य) (प्रज्ञा) भेत् शितन मपी (छत्री) छेती (रभमात्) वेग र
(आत्मकर्मोभयस्य) आत्मा आर कर्म गेना के (सूक्ष्मे अत
सधिप्रधे) सूक्ष्म अंतर ग के आत्मा मपी रध म (निपतति) गिरती ।
(अत स्थिरविशदलमद्धाग्नि) अंतर ग के निश्चल और निम
शोभायमान है तेज त्रिपदा एव (चैतन्यपूरे आत्मान मग्न कुर्वता
वधवा के पुत्र आत्मा को मग्न करता हुआ (च) आर (वध अज्ञान
भावे कुर्वती) वध का अज्ञान भावे में करती हुए (नियमित अभित
भिन्नभिन्नौ करोति) निश्चय रूप से गेना को प्रथम प्रथम
करता है ॥८॥

मित्तामर्षमपि स्वलक्षणवलाद्भेत्तु हि यच्छ्रव्यते
चिन्मुद्राकितनिर्निभागमहिमाशुद्धाश्चिदेवास्म्यहं ।
भिद्यन्ते यदिकारकाणि यदिवाधर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्ता न भिदाऽस्मिन्नात्रनविभोभावेविशुद्धेचिति

अथ—(मूलचक्षुःखलान् सर्ज) अपन लक्षण के बल से
 (भित्वा अपि) मित्र कर्के भी (यत्) जो (त्ति) निश्चय से
 (भक्तु) भेद करने में (शक्यते) समर्थ है (चिमुत्तामिति निर्भिभाग
 निर्दिष्टा) चैतन्य मुद्राम् चिदित निर्भिभाग मन्मिमाणा (शुद्धा चित्तपद
 अह अग्नि) निमल चैतन्य रूप हा में है (यत्ति कारणाणि) यत्ति
 कता कम करण सम्प्रदान अपादान और अगिरण (यत्ति वा) अथवा
 (धर्मा) नियन्त्र अनियन्त्र एकन्त्र द्वात्ति अनन्त धर्म (यत्ति वा)
 (गुणा) अनन्त गुण आत्ति गुण (भिन्ना ते) मे को प्राप्त
 हैं (तर्हि) ता (भिन्ना) भेद को प्राप्त हा (विशुद्धे विभौचिनि)
 न त् यारु चतय रूप (भावे काचन भिन्ना नास्ति) भाव में काद भी
 भेद नही है ॥ ॥

(मन्मिमाणा) १८३

अद्वैताऽपि हि चेतनाजगतिचेदृद्गज्ञप्तिरूप त्यजेत्
 त्सामान्यप्रतिशेपरूपप्रिरहात्माऽस्ति त्वमेव त्यजेत्
 त्यागे जडताचितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका
 त्मात्रान्तमुपैति तेन नियत दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥

अथ—(चित् - गति चेतना) यत्ति जगत् में चेतन (हि)
 चेतन्य में (अद्वैता) अद्वैत है (तर्हि) ता (दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत्)
 ज्ञान और ज्ञान रूप को छोड़ (तत्) ता (सामान्यप्रतिशेपरूपप्रिर
 हात्) सामान्य और विशेष रूप का अभाव हान से (अस्तित्वम् एव)
 प्राने आत्मत्व को हा (त्यजेत्) छोड़ देगा (तत्त्यागे चित् अपि
 रहना भवति) उस चेतनारूप अस्तित्व के छोड़ने पर चेतन के भी
 प्रवेतनता हो जायगी (व्याप्य आत्मा) व्याप्य आत्मा (व्यापकात्
 तेना अन्त उपैति) व्यापक चेतन के बिना विनाश का प्राप्त हो जायगा

(मन्त्ररा) १८१

प्रज्ञान्छेत्रीशितेय कथमपिनिपुणै पातितासावधाने
 सूक्ष्मेऽन्त सधियधे निपतति रभमादात्मकर्मोभयस्य
 आत्मानमग्नमत स्थिरविशदलसद्वाग्निचैतन्यपूरे
 वधवाज्ञानभावनियमितमभित कुर्वतीभिन्नभिन्नौ

अन्वयाथ—(साधवाने निपुणै) साधवान निपुण अध्यात् चतु
 पुत्रा मे (कथमपि) विमा भा प्रसा म (पातिता) टाला गर (शिता) पनी
 (च, य) (प्रज्ञा) भे र शिव रूपी (श्रुती) छेनी (रभसात्) बग से
 (आत्मकर्मोभयस्य) आत्मा और कर्म दोनों के (सूक्ष्मे अत
 सधियधे) सूक्ष्म अन्तर्गत न आने तथा वर में (निपतति) गिरता है
 (अत रिरविशालसद्वाग्नि) अतः ग म निश्चल और निमल
 शाश्वतमान ३ तत्र विमला एव (चैतन्यपूर आत्मान मग्न कुर्वती)
 चतु र्ध पुरम आत्मा को मग्न करती हुई (च) और (वध अज्ञान
 भाव कुर्वती) उध का अज्ञान भावों म करता हुई (नियमित अभित
 भिन्नभिन्नौ करोति) निश्चय रूप म दोनों को प्रथम प्रथम
 करता ॥ १८ ॥

(शास्त्रलिखीदित) ८८

भित्वा मर्वमपि स्वलक्षणवलाद्भेत्तु हि यच्छ्रव्यते ।
 चिन्मुद्रावितनिर्भिभागमहिमाशुद्धाश्चिदेवास्म्यहं ।
 भिद्यन्ते यदि मारकाणि यद्विवाधर्मा गुणा वा यदि ।
 भिद्यन्ता न भिदाऽस्तिकाचनपिभौभावेविशुद्धेचित्ति

त्रि मम न) कदाकि वे ममस्त मान पद्वान इ वे मरे नहा ह ॥२॥

(अनुपदुप) १-६

परद्रव्यग्रहं कुर्वन्, वध्यतेऽपराधवान् ।

वध्येतानपराधो न, स्वद्रव्ये सृष्टो मुनि ॥७॥

अन्वय—(परद्रव्यग्रहं कुर्वन् अपराधवान्) परद्रव्य को ग्रहण
करा हुआ अपराधी (एव वध्यते) ही वध का प्राप्ति होता है (स्वद्रव्य
सृष्टो मुनि अनपराध न वध्यते) अपनी द्रव्य में लाने मुनि
प्राप्त रहते हैं इसलिये वध का प्राप्ति नही होता ॥७॥

(मालिनी) १-७

अनवरतमनन्तै वध्यते सापराधः ।

स्पृशति निरपराधो वधन नैव जातु ॥

नियतमयमशुद्ध स्र भजन्मापराधो ।

भवति निरपराध साधुशुद्धात्ममेव ॥८॥

अन्वय—(सापराध अनवरत अनन्तै) अपराधी निरन्तर
अनन्त कर्मरूप पुद्गला से (वध्यते) वधना है (निरपराध जातु
स्पृशति) अपराधी रहित कर्मा भी वध का नहीं (स्पृशति) स्पृश
ता (अयं यः) (अशुद्ध स्र भजन्) अशुद्ध करने को भजना
आ (नियत सापराध एव भवति) नियम से अपराधी होता ही है
शुद्धात्मसेवा साधु निरपराध भवति) शुद्ध आत्मा ही सेवा
करे वाला साधु निरपराधी होता है ।

(तत्तु चित् नियम इत्याजकृपा) इम सारण स चैतन आत्मा नि
मे नरान पान रूप ह ॥४॥

(—द्रव्या) १८४

एकश्चित्तश्चिन्मय एव भावो भावा परेथेऽस्मिन् तेषां
आद्यस्तत्तश्चिन्मय एव भावो भावा. परेऽस्मिन् तेषां

अर्थ—(चित) चिन्मय का (एव) एक (चिन्मय एव)
चिन्मय ही (भाव) अस्ति) भाव है (ये) जो (परे भावा भावा)
परभाव हैं (ते) वे (स्मिन्) निश्चय स (परेषां) परे ।
(तत्) चिन्मय (चिन्मय भाव एव) तत्पर भाव ही (भाव)
उत्पन्न है (परभावा) परभाव (मर्त्यत हेया एव मर्त्यत) मर्त्य
तत् ॥ वागने नोप ही ह ॥४॥

(शास्त्राचार्योक्ति) १८५

मिद्वान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यत
शुद्ध चिन्मयमेकमेव परमज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।

एते येन समुल्लसन्ति विबुधा भावा प्रथमलक्षणा
तेऽहं नाऽस्मि यतोऽत्र मम परद्रव्य ममग्रा अपि

अर्थ—(उदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः) निम्न है म
व्यापार विद्वान् एव मोक्ष को चाहने वाले (अयं सिद्धात् मयता
इम मिद्वान् का तत्त ह्ये) अहं शुद्ध एव चिन्मय परम ज्योति
॥ शुद्ध एक चिन्मय श्रेष्ठ ज्योति रूप (एव) हा (सदैव अस्मि
हमरा म ह (नु) और (य एते प्रथमलक्षणा विबुधा भावा
जो वे निम्न निम्न लक्षण वाच्य भावा प्रकार के भाव (समुल्लसन्ति
ही रह है (ने अहं नास्मि) वे म नहीं है (यत ने समग्रा परद्रव्य

(न मम न) क्योंकि वे सम्मत् मान परद्रव्य ह ये मरे नही ह ॥२॥

(अनुष्टुप) १-६

विद्रव्यग्रह कुर्वन्, वध्यतैवापराधमान् ।

न्येतानपराधो न, स्वद्रव्ये सृष्टो मुनि ॥७॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यग्रह कुर्वन् अपराधमान्) परद्रव्य को ग्रहण
वा द्रव्य अपराध (तत्र वध्यते) है वर को प्राण हाना ह (स्वद्रव्य
न मुनि अनपराध न वध्येत) अर्थात् स्वयं न हान मुनि
तत्र रहित है इत्यन्ये अध को प्राण नष्ट हाना ॥७॥

(मालिनी) १-७

निरस्तमनन्तै वन्यते सापराधः ।

स्पृशति निरपराधो वधन नैव जातु ॥

नियतमयमशुद्ध स भजन्मापराधो ।

भवति निरपराध साधुशुद्धात्ममेव ॥८॥

अन्वयार्थ—(सापराध अनन्तरत अनन्त) अपराध निरस्त
। समस्त दुर्गला मे (वध्यते) वधना है (निरपराध जातु
नन) अपराध रहित कभी भी वध का नही (स्पृशति) स्पर्श
(अय) यः (अशुद्ध स भजन्) अशुद्ध अन्न को भजना
(नियत सापराध एव भवति) नियम से अपराध हाना ही है
द्धात्मसेवा साधु निरपराध भवति) उक्त आत्मा का सेवा
गला सातु निरपराध होता है ।

प्रमादकलित कथ भवति शुद्धभायोऽलम ।
 क्पायभरगौरवाटलमत प्रमादो यत ॥
 अत स्वरसनिर्भरे नियमित स्वभावे भवन् ।
 मुनि परमशुद्धता व्रजति मुच्यते चाचिरात् ॥११

अन्वयाथ—(यत क्पायभरगौरवान्) किम कारणं स
 क्पाय के भार स यजनार (अलमत प्रमादं भवति) आलम्ब्य स
 प्रमादं हाता है (प्रमादकलित अलम) प्रमादं स महित आलम
 भाग मे (शुद्धभाय कथ स्यात्) शुद्ध भाग कम हा सक्ता है (अत
 स्वरसनिर्भर) इसलिये आमिस् रम क भाग मे भगपू (स्वभावे
 नियमित भवत्) स्वभावे मे निश्चल जाता हुआ (मुनि परमशुद्धता
 व्रजति) मुनि परम शुद्धता का प्राप्ति होता है (च अचिरात् मुच्यते)
 और शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥११॥

(शार्दूललिपि दित) ६१

त्यस्त्वाऽशुद्धिविधायि तत्किलपरद्रव्यसमग्रस्वय
 भ्वद्रव्येरतिमेति य. मनियत सर्वापराधव्युत ॥
 बन्धध्वसमुपेत्यनित्यमुदित स्वज्योतिरञ्जोञ्जल
 च्चैतन्यामृतपूरपूर्णमहिमा शुद्धोभवन्मुच्यते ॥१२

अन्वयाथ—(तत्) इम कारण (य अशुद्धिविधायि) जो
 अशुद्ध का करन बाने (समग्र परद्रव्य स्वय) समग्र परद्रव्य को
 स्वयम् (त्यक्त्वा) छोडकर (तिल) निश्चय से (स्वद्रव्ये रति

इत्येव नियम निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यता
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैर्गमेन्यता ज्ञानिता

अन्वयाथ—(अज्ञानी प्रकृतिस्वभावानिरत) अज्ञानी जानाशक्त्या
प्रज्ञाओं के स्वरूप में लगा हुआ है इसीलिये (अतएव सर्व भवेत्)
निर्गुण भाक्ता है (ज्ञानी तु) जाना ला (प्रकृतिस्वभावानिरत)
ज्ञानाशक्त्या प्रकृतियों के स्वरूप से अलग है अलिये य (जानुचित्
वदक न) कभी भी भोक्ता नहीं है (अतएव नियम निरूप्य
निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यता) इस प्रकार कि नियम का निरूपण कर
निपुण पुण्य अज्ञानियों को छाँटें (शुद्धैकात्ममये महसि अचलितैः
ज्ञानिता आमेन्यता) शुद्ध एक आत्म रूप तब में निश्चल पुण्य ज्ञानी
में को भलाभाँति मजन कर ॥५॥

(वसन्ततिलका) १६८

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म—

जानाति केवलमय क्लिप्त तत्स्वभाव ।

जानन्पर करणवेदनयोरभावा—

शुद्धस्वभावनियत स हि मुक्त एव ॥६॥

अन्वयाथ—(ज्ञानी कर्म न करोति) जाना कर्म का नहीं करना
(न च वेदयते) और न भोगता है (अयं) यह जीव (केवल
जानाति) सिर्फ कर्म को जानता है (क्लिप्त) मिश्र से (तत्स्वभाव
जानन्) उस स्वभाव को जानता हुआ (करणवेदनयोर्भावात्)
हरने और भोगने के अभाव से (पर शुद्धस्वभावनियत) अतः शुद्ध

स्वभाव म विज्ञान (हि) लब्ध म (म मुन पय) वह आत्मा मुक्त
हा ह ॥६॥

(अनुष्टुप) १६६

ये तु कर्तारमात्मान पश्यन्ति तमसा तता ।
सामान्यजनवत्तेषा न मोक्षोऽपि मुमुक्षुताम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(मु ये) और जो (तमसा) अज्ञान अधार से
(तता) यात ह (ते) व हा (आत्मान कर्तारम् पश्यन्ति)
आत्मा को कर्ता मानत ह (सामान्यजनवत्) साधारण मनुष्यों के
समान (तेषा मुमुक्षुता) उन मुमुक्षुता क। (अपि मोक्ष न) भा
मोक्ष नहा हो सकता ॥७॥

(अनुष्टुप) २००

नास्ति भवोऽपि सम्बन्ध परद्रव्यात्मतत्त्वयो ।
कर्तृकर्मत्वमम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥८॥

अन्वयार्थ—(परद्रव्यात्मतत्त्वयो) परद्रव्य आत्मात्म त्व म
(सत्य अपि सम्बन्ध) जो भी संबन्ध (नास्ति) नहा है (कर्तृ
कर्मत्वमम्बन्धाभावे) कर्ता आत्मा कर्म रूप संबन्ध क अभाव म
(तत्कर्तृता कुतः स्यात्) वह कर्म का कर्तापन कस हो सकता
है ॥ ८ ॥

(वसततिलका) २०१

एकस्य वस्तुन इहान्यतरेणमाद्ध—

सम्बन्ध एव सकलोऽपि यतो निषिद्ध ।

तत्कर्तृकर्म घटनाऽस्ति न वस्तु भेदे—

पश्यन्त्वकर्तृ मुनयश्च जना स्वतत्त्व ॥६॥

अन्वयाथ—(इह) इस लोक में (एतस्य वस्तुन) किंवा एक वस्तु का (अ यतरणं सार्द्धं) दूसरी वस्तु के साथ (यत् सकल अपि) जिस कारण से सभी (मय्य निषिद्ध एव) सब निषिद्ध ही हैं (तन्) इस कारण (वस्तुभेदेकर्तृकमघटना) वस्तु के भेद से कर्ता और कर्म का यहार (नास्ति) नहीं बन मरना समान है (मुनय जनाश्च) मुनिजन और माध्याग्य जनता (स्वतत्त्व) निज स्वतत्त्व का (अकर्तृ) कर्ता रहित (पश्यन्तु) देखें ॥६॥

चमत्तिलिका २०२

ये तु स्वभावनियम कलयन्ति नेय—

मज्ञानमग्नमहमो वत ते वराका ।

कुर्वन्ति कर्म तत एव हि भावकर्म—

कर्ता स्वयं भवति चेतन एव नान्य ॥१०॥

अन्वयाथ—(यत्) और ना (इयम स्वभावनियमं न फलयति) इस स्वभाव के नियम का नहीं जनत है (यत्) अतः ही कि (अज्ञानमग्नमहमो) अज्ञान में लीन है तब जिज्ञासा का एवम् (त वराका कर्म कुर्वन्ति) वे जिज्ञासे कर्म का करते हैं (तत एव) इसलिये ही (चेतन) आत्मा (हि) निश्चय से (भावकमत्ता स्वयं एव भवति) मात्र कर्मा का कर्ता स्वयं ही होता है (अथ न दूसरा महा ॥ १० ॥

(शास्त्र लघुविकीटित) २०३

कार्यत्वादकृत न कर्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो
 रज्ञाया प्रकृते स्वकार्यफलमुग्भावानुषगात्कृति
 नैकस्या प्रकृतेरचित्पलमनाज्जीवोऽस्य कर्ता ततो
 जीवस्यैव च कर्म तच्चिदनुग ज्ञाता न यत्पुद्गल

अथवा—(कार्यत्वात्) तत्र होन न (कर्म) कर्म (अकृत)
 विना क्रिया (न) नाना हो सकता (च) और (तन् जीवप्रकृत्यो)
 वह कर्म जान और प्रकृत (द्वयो) दोनों का क्रिया हुआ (न भवेत्)
 नाना हो सकता, यदि प्रकृति का क्रिया माना जाने तो (अज्ञाया प्रकृते
 स्वकार्यफलमुग्भावानुषगाम्) अन्वेन प्रकृति के अन्वेन तब के फल
 का भागन का प्रयोग हो जायगा (एकस्या प्रकृत) एक प्रकृति ।
 (अचित्पलमनात्) अथवा होन न (कृति न) कर्मरूप तब नाना
 हो सकता (नत अस्य कृता) न काम्य इस कर्म का कर्ता (जीव)
 जान है (तत्कर्म) यन् कर्म (चायस्य पथ) का हा है क्योंकि
 (चिन्नुग) तम ज्ञान के साथ अन्वरूप है (नन्) इस कारण न
 (पुद्गल) पुद्गल (ज्ञाता न) जानन वाला नही है अनिष्ट भाव
 कर्म नाना है ॥ ११ ॥

(शास्त्र लघुविकीटित) १४

कर्मैव प्रवृत्तस्य कर्तृवृत्तकै चिप्त्वात्मन कर्तृतां
 कर्तात्मेपक्यचिदित्यचलिताकैश्चित्प्रति कोपिता
 तेषामुद्धतमोहमुद्धितधिया बोधस्य सेशुद्धये ।
 स्याद्वाटप्रतिपक्षलब्धविजयास्तुस्थितिस्तृयते १२

अन्वयार्थ—(आत्मान) आत्मा के (हन्यै) धातु (उभय)
 कर्ता ही (कर्तृ) कर्ता (प्रवितक्य) मानकर (कर्तृत्वा) आत्मा
 के कर्तान की (क्षिप्रया) दूस्वर (एष आत्मा) यः आत्मा (अथ-
 चिर) कश्चित् (कर्ता) कर्ता है (इति) एषा (अचलिता) निश्चल
 भूति (जिनशरी को (पेशिचत्) किहा ने (जोपिता) मृदु कर दिया
 (तथा) उन (उद्धतमोहमुद्रितविया) महान मोह से मग्न बुद्धि
 वालों के (बोधस्य) बोध को (मशुद्धये) अ ठी तरह शुद्ध करने के लिये
 (स्याद्वाप्यप्रतिबंधलब्धविजया) स्याद्वा क प्रतिपत्ति विजय को
 प्राप्त होती (यस्तुस्थिति स्मृतये) यस्तु की मया । कर्ता कर्ता है ॥१२॥

(शार्दूलनिधीहित) ०५५

मा कर्तारममी स्पृशन्तु पुरुष मारया इराप्यार्हता
 कर्तार कलयन्तु त स्मिन् मदा भेदावबोधादध
 उद्धतबोधतबोधधामनियत प्रत्यक्षमेन स्वय ।
 पर्यन्तु च्युतकर्तृभावमचल ज्ञातारमेक परमा १३

अन्वयार्थ—(अमी आर्हता) वे जिन लोग (मारया इरा)
 मार्य मतवालों के समान (पुरुष कर्तार) आत्मा का कर्ता (सम्प्रति तु)
 मत्त्व में (भेदावबोधात्) भेद ज्ञान के (अत्र) पक्ष (त) एष
 आत्मा को (मदा) हमारा (किल) निश्चय से (कर्तार कलयन्तु)
 कर्ता मान (उद्धन्तु) भेद विज्ञान के पश्चात् तो (उद्धतबोधधामनि-
 यत) उद्धत ज्ञान रूप मन्त्र में निहित (एत) हम आत्मा को (च्युत
 कर्तृभाव) कर्ता पक्ष में स्थित (अचल) निश्चल (एव) अन्तिय
 (पर) धेन (ज्ञातार) ज्ञाता (स्य) स्वयम् (प्रत्यक्षेण स्वयं तु)
 प्रत्यक्ष रूप से दे ॥ १२ ॥

क्षणिकमिदमिहेक कल्पयित्वात्मतत्त्व ।
निजमनमि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्निभेदम् ॥
अपहरति विमोह तस्य नित्यामृतौघे ।
स्वयमयमभिपिचश्चिन्मत्कार एव ॥१४॥

अन्वय—(मय) का एक वाड (मय) म लाय न (इन्द्र-
आत्मनस्व क्षणिक कल्पयित्वा) म आत्म तत्त्व का क्षणिक कल्पना
का (कर्तृभोक्त्रा निभेद) कता आत्मा भोक्ता क मय का (निजमन
मि विधत्ते) अपन मनम धारण करता है (तस्य नित्यामृतौघे) उसमें
नित्यरूप अमृता समुदाय म (अभिपिचन) मानता हुआ (विमोह)
अज्ञानरूप (अय) य (चिन्मत्कार) चन्म का चमत्कार
(स्वयमय) स्वयमय (अपहरति) हूँ करता है ॥ १४ ॥

(अनुष्टुप) ००३

वृत्त्यशभेदतोऽत्यन्त वृत्तिमन्नाशकल्पनात् ।
अन्य करोतिभुक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥

अन्वय—(वृत्त्यशभेदतोऽत्यन्त) अत नगुर्वी अस्या क प्रथम
म म (अत्यन्त) अत्यन्त रूप म (वृत्तिमन्नाशकल्पनात्) वृत्ति
मान पश्यता कल्पना म (अन्य करोति) दूसरा करता है (अन्य
भुक्ते) दूसरा का भोक्ता है (इति एका त मा चकास्तु) एका
मानता न ही ॥ ५ ॥

(शाट्वलनिघोषित) २०२

आत्मानपरिशुद्धमीप्सुभिरतिव्याप्ति प्रपद्यान्धकै
 तालोपाधिवलादशुद्धिमधिम तत्रापि मत्वा परै.
 तैतन्य क्षणिक प्रकल्प्य पृथुकै शुद्धर्जुसूत्रे रतै
 आत्मायुजिम्भनएषहारवदहो नि सूत्रमुक्तेक्षिभि

अन्वय—(आत्मान परशुद्धं इप्सुभि) आत्मा का विशुद्ध
 मानवान (पृथुकै) वाढ (तालोपाधिवलाम्) काल रूप उपाधि
 व बल म (अतिव्याप्ति) अतिव्याप्ति को (प्रपद्य) प्राप्तकर (तत्रापि)
 मन भी (अधिम) अरि (अशुद्धिम) अशुद्धिको (मत्वा)
 मनकर (परै तैतन्य) दूसरे आत्मा को (क्षणिक प्रकल्प्य)
 माणिक रूप कल्पना क (शुद्धर्जुसूत्रे रतै) शुद्धरजुगन्धन ॥ भारत
 म (अरतै) अर्थात् ने (नि सूत्रमुक्तेक्षिभि) स्वर्गहित मानिषा
 का केवल बाल (हारवत्) हार के समान (एष) इस (आत्मान
 युजिम्भन अहो) आत्मा को छात्र किया यह ल है ॥ २६ ॥

(शाट्वलनिघोषित) २०३

स्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्यभेदोपि वा
 कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेवसचिन्त्यता
 प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भर्तु न शक्या काचेत्
 तच्चितामणिमालिनेयमभितोप्येका चकास्त्वेव न.

अन्वय—(कर्तु) कर्ता के (च) और (यदयितु) माता क
 (युक्तिवशत) युक्त के वश म (भद) भ (वा) अथवा

५५॥॥रुद्रगण केवल—

कर्तृकर्म च विभिन्नमिष्यते ।

निश्चयेन यदि यस्तुचिन्त्यते—

कर्तृकर्म च मदेकमिष्यते ॥१॥

अन्यथा—(क्ययकारणशास्त्र) १- हा की दधि य (लय)
१। (फल) मि (कर्तृ) कर्ता कर्म (कर्म) कर्म (विभिन्न)
विष्णुन भिन्न (कर्तृ) कर्तृ कर्म (कर्म) कर्म (विभिन्न)
निश्चयेन यदि यस्तुचिन्त्यते (यदि) यदि (निश्चयेन) यदि (निश्चयेन)
ता (कर्तृ) कर्ता (कर्म) कर्म (कर्म) कर्म (कर्म) कर्म (कर्म)
कर्म (कर्म) कर्म (कर्म) कर्म (कर्म) कर्म (कर्म) कर्म (कर्म)

(नट टक) = ११

ननु परिणामी एव किल कर्मनिश्चयत ।
स भवति नापरस्य परिणामिन एव न भवेत् ॥

न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न वैकृत्या ।
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृत्वादेव तत ॥१८॥

अव्याख्यान—(कर्मनिश्चयत) कर्म के विशेष निश्चय में (१८)
ह (य परिणामी) वह पन्था परिणाम वाला (भवात्) होता है
(नतु अपरस्य) यह निश्चय ही है कि तूमे (परिणामिन) परि
णाम देने को (स) वह परिणाम (न भवतु) नही हा सकता (इह
कर्म कर्तृ शून्य न भवति) इस लोके, मैं कर्म कता के लिये नही होता
(१८) यहा (भवतया) एकात्म रूप में (स्थिति) स्मृ की ध्याना
(न भवति) नहीं होती (नत वस्तुन) कमलिये स्मृ के (कर्तृ—
त्वात्) कता होने में (तद्वद्वतु) वही कर्म भी होना चाहिये ॥ १८ ॥

(१९)

यद्विदुर्धति यद्यपि स्फुटदनन्तशक्तिः स्वयम् ।
तथाप्यपरवस्तुनोविशति नान्यवस्त्वन्तर ॥
स्वभावनियत यत ममलमेव वस्त्वप्यते ।
स्वभावचलनाकुल किमिहमोहित क्लिश्यते ॥१९॥

अव्याख्यान—(यद्यपि) यद्यपि वस्तु (स्वय स्फुटदनन्तशक्ति)
तु प्रमत्त अनन्त शक्तिमान है (तथापि अ यद्यस्तु) तो भी अय वस्तु
(अपरवस्तुन) दूसरा वस्तु के (अन्तर न विज्ञात) मन्त्र में प्रवेश
नही करती (यद्विदुर्धति) किन्तु ध्यान हा रहा करता है (यत ममल-
मेव) क्योंकि सम्मत् ही (वस्तु) वस्तु (स्वभावनियत) स्वभाव में
निश्चित (क्लिश्यते) माना गइ है (इह मोहित) तब मोह का प्राप्य
दुष्टा (स्वभावचलनाकुल) स्वभाव का च—
दुष्टा (१९) वही दुष्टा माना है ॥

(१२४)

(रथादता) = १३

वस्तु चैकमिह नान्यमस्तुनो —

येन तेन खलु वस्तु वस्तु तत् ।

निश्चयोऽयमपरोऽपरस्य कः —

किं करोतिहि वहिलु'ठन्नपि ॥२०॥

अवधार्य—(इह) 'म' लोके मं (यन एव) जिस कारण से एक वस्तु
(अथ वस्तु न) दूसरी वस्तु नहीं है (तेन) इस कारण से (तत्
वस्तु) यन् वस्तु (खलु) निश्चय से (वस्तु) यन् है (अथ निश्चय)
यन् निश्चय है (अपर) दूसरा (क) कान (वहिलु'ठन्नपि) बाहिर
लान्ता हुआ भी (अपरस्य) दूसरा का (हि) निश्चय से (किं करोति)
क्या करता है अथवा कुछ भी नहीं करता ॥२०॥

(रथादता) = १४

यत्तु वस्तु कुर्वतेऽयमस्तुनः —

किञ्चनापि परिणामिनः स्वय ।

व्यावहारिकदृशेन तन्मतः —

नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥२१॥

अवधार्य—(यत्तु) जो (यन्तु स्वय) वस्तु यन् (परिणामिन)
परिणामनशील (अन्यास्मून) दूसरा वस्तु का (किञ्चनापि कुर्वते)
कुछ भी करती है (तत्) तद् (व्यावहारिकदृशा एव) 'य'वहार का
दृष्टि म'मी (मतं) माना गया है (निश्चयान्तरं) निश्चय से ता
(इह) इस लोक मं (अयम् किमपि नास्ति) दूसरा कुछ भी
नहीं है ॥२१॥

शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेस्तत्त्वममुत्पश्यतो ।
 नैकद्रव्यगतगत चक्रास्ति किमपि द्रव्यांतर जातुचित्
 ज्ञान ज्ञेयमर्थेति यत्तु तदयं शुद्धस्वभाषोदय ।
 किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वान्वयवते जना

अन्वयार्थ—(शुद्धं द्रव्यनिरूपणार्पितमत) शुद्ध द्रव्य के निरूपण
 में लगाना है शुद्ध को जिसने और (तत्त्व) तत्त्व अथवा वस्तु
 रूप को (समुत्पश्यत) भला भावने देखने वाले क (एकद्रव्यगत)
 एक द्रव्य में प्राप्त (किमपि) काह भी (द्रव्यांतर) दूसरा द्रव्य
 (जातुचित् न चक्रास्ति) कभी भी शाना नहीं पाया (यत्तु) और जो
 (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञेय) ज्ञेय—अर्थ को (अर्थेति) जानता है (तत्)
 यह (अयं) यह (शुद्धस्वभाषोदय) शुद्ध द्रव्य के स्वभाव का
 रूप है शानिष (द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधिय) दूसरे द्रव्य के ग्रहण
 करने से आकुल शुद्धि वाले (जना) लोग (तत्त्वात्) वस्तु रूप से
 (किं द्रव्यान्तर) क्या दूसरा द्रव्य है ॥ ॥

शुद्धद्रव्यस्वरसम्भवात् किं स्वभावस्य शेष—
 मन्यद्रव्य भवति यदि वा तस्य किं स्यात् स्वभाव ॥
 ज्योत्स्नारूपस्नपयतिभुज नैव तस्यास्तिभूमि—
 ज्ञान ज्ञेय कलपयतिमदा ज्ञेयमस्यास्ति नैव ॥२३॥

अथा १—(शुद्धद्वयपरमभवनान्) शुद्ध द्वय के निरूपण रूप
 होने में (शेष) बाकी (अयद्वय) दूसरा द्वय (स्वभावरूप कि
 भवनान्) दूसरे के स्वरूप का क्या कर सकता है अतः कुछ भी नहीं (यदि
 वा) अथवा (तस्य स्वरूपं हि स्यात्) उस अय द्वय का स्वरूप
 क्या ही करता है अतः कुछ भी नहीं (उद्योत्तररूप भुव स्तपयति)
 चाँगी का रूप प्रतीति का स्वरूप क्या है (तस्य) उस चाँगी का रूप
 (मूर्ति नैराश्रित) प्रतीति रूप नहीं होता (ज्ञान) ज्ञान (ज्ञेय)
 रूप अथवा प्रतीति को (सदा कलयति) हमेशा जानता है (अथ)
 इस ज्ञान के (ज्ञेय) शेष पक्ष (नैराश्रित) नहीं होता ॥२३॥

(मन्त्रादा ता) २१७

रागद्वयद्वयमुद्यते तादृतेतन्न यावत् ।
 ज्ञान ज्ञान भवति न पुनरो यता याति वो य ॥
 ज्ञान ज्ञान भवतु तद्विद न्यस्कृताज्ञानभाव ।
 भावाभावो भवति तिरयन्येन पूर्णस्वभाव ॥२४॥

अथा २—(रागद्वयद्वय) राग और द्वेय य दाना (तावत्
 उद्यते) तथा तक उ प्रमाण रहता है (यावत् ज्ञानज्ञान न भवति)
 जब तक ज्ञान ज्ञान नहीं होता (पुनरो यता याति) और
 पुनः अथवा पक्ष उद्यते का ज्ञान नहीं होता (न्यस्कृताज्ञान
 भाव) इतिहास दूर कर दिया है अज्ञान भाव को विमल प्रकाश (इदं
 ज्ञान ज्ञान भवतु) यह ज्ञान ज्ञान रूप है (येन भावाभावो तिरयत
 पूर्णस्वभाव भवति) विमल भाव और अभाव इन दोनों का दू
 कर्ता हुआ पक्ष प्रमाण रूप है ।

(मदमाता) २१८

रागद्वयोपि हि भवति ज्ञानमज्ञानभावा
नौ वस्तुत्वप्रणिहितदृशादृश्यमानौ न किञ्चित् ॥

सम्यग्दृष्टिं जपयतु ततस्तत्त्वदृष्ट्या स्फुटन्तौ ।

ज्ञानज्योतिर्ज्वलतिमहज येन पूर्णाचलार्चिर्न ॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से (इह) इन आत्मा में (ज्ञान
अज्ञानभावान्) ज्ञान, अज्ञान भाव में (रागद्वयौ भवति) राग और
द्वेष का हो जाना है (प्रणिहितदृशा दृश्यमानौ) सादृशान दृष्टि
में स्थित पाले (नौ किञ्चित् वस्तुत्व न) वे राग और द्वेष कुछ
नौ स्फुटमान नहीं हैं (तत सम्यग्दृष्टिं तत्त्वदृष्ट्या) इसलिये
सम्यग्दृष्टि तब दृष्टि से (स्फुटन्तौ) प्रतिभासमान राग और द्वेष को
(जपयतु) पूर करें (येन महज पूर्णाचलार्चिर्न) जिसमें स्वाभाविक
सामूह निरचल प्रकाशमान (ज्ञानज्योतिर्ज्वलति) ज्ञान रूपी ज्योति
प्रकाशमान रहे ॥ २१ ॥

(शालिनी) २१९

रागद्वयोत्पादक तत्त्वदृष्ट्या —

नान्यद्व्य वीक्ष्यते किञ्चनापि ।

सर्वद्वयात्पत्तिरन्तश्चकास्ति—

न्यक्ताऽत्यन्त स्वस्वभावेन यस्मात् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(तत्त्वदृष्ट्या) यथार्थ दृष्टि से (रागद्वयोत्पादक)
राग और द्वेष को उत्पन्न करने वाला (अन्यत् किञ्चन अपि) दूसरा

दूरारूढचरित्रमैभयवलाच्चचच्चिदर्विष्मयी
विदन्ति स्वरसाभपिक्तभुवना ज्ञानस्य सचेतन

अन्वयाथ—(रागद्वेषप्रभावमुक्तमहम) रागद्वेष रूप विभ
मे शान तत्र बाले (नित्य स्वभावस्य) निरंतर स्वभाव को हा स्त
करने वाले (पूर्वागामिममस्तकर्मप्रिकला) भूत भविष्यत के सम
कमा से शून्य और (नष्टात्पाद्यात्) दत्तमान व कर्मोंदय से (भिन्ना
प्रथम (दूरारूढचरित्रमैभयवलात्) अतिशय रूप से धारण किए
गये चारित्र रूप पश्य के बल से (चचच्चिदर्विष्मयी) चमकीली
फलन रूपी पालाआ गाली (स्वरसाभपिक्तभुवना) अपने रम से
साथ दिया है लाक को जिम्मे एनी (ज्ञानस्य सचेतनाविदति) शान
की समीपान चेतना का प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

(उपचाति) २२४

ज्ञानस्य सचेतनयेवनित्य प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्ध
अज्ञानमचेतनयातुधावनग्गोधस्यशुद्धिनिरुणद्धिवद

अन्वयाथ—(ज्ञानस्य सचेतनया) ज्ञान की सम्यक् चेतना
(एव) ही (ज्ञान अतीवशुद्ध) ज्ञान अतिशय रूप से शुद्ध (नित्य
प्रकाशते) निरंतर प्रकाशित होता है (अज्ञानसंचेतनयातु) अज्ञान
चेतना से तो (धावन) शानता हुआ (वध) वध (धावस्य)
शान की (शुद्धि निरुणद्धि) शुद्धि को रोक देता है ॥ ३१ ॥

(आर्या) २२५

कृतकारितानुमननेस्त्रिकालनिपयमनोपचनकार्यै
परिहृत्य कर्म मां परम नेष्कार्यमवलम्बे ॥ ३२ ॥

दूरारूढचरित्रैर्भवतान्त्रचच्चिदचिन्मयी
प्रिदन्ति स्वरमाभषिक्तभुवना ज्ञानस्य सचेतना

अन्यथा—(रागद्वेषप्रभावमुक्तमन्त्र) रागद्वेष रूप नाम
से शून्य तब जाने (नित्य स्वभावग्रहा) निरंतर स्वभाव का ही स्वर
करन जाने (पूवागामिममल्लर्म्मप्रिदन्ति) भूत भविष्य के सम
कमा से शून्य और (नान्तरादयान्) अनन्त के कमा से (भिन्ना
ग्रहा) दूरारूढचरित्रैर्भवतान्) अतिशय रूप से धारण कि
गय चारित्र रूप पश्य के बल से (चचच्चिदचिन्मयी) स्वभाव
चेतन रूपों गलान्ना वाली (स्वरमाभषिक्तभुवना) अपने स्वर
सांच दिया है लोक को जिन्ने पना (ज्ञानस्य सचेतनाप्रिदति) इ
की सभाचान चेतना को प्राप्त करत है ॥ ३० ॥

(उपनाति) ३०५

ज्ञानस्य सचेतनयैर्नित्य प्रकाशते ज्ञानमतीवशुद्ध
अज्ञानसचेतनयातुधावनगोधस्यशुद्धिनिरुणद्धिवद्य

अन्यथा—(ज्ञानस्य सचेतनया) ज्ञान की सम्पूर्ण चेतना से
(नित्य) ३१ (ज्ञान अतीवशुद्ध) अन अतिशय रूप से शुद्ध (नित्य
प्रकाशते) निरंतर प्रकाशित होता है (अज्ञानसचेतनयातु) अज्ञान
चेतना से तो (धावन) दावना हुआ (वद्य) वद्य (बोधस्य
ज्ञान की (शुद्धि निरुणद्धि) शुद्धि को राख देता है ॥ ३१ ॥

(आया) ३२

कृतकारितानुमननेस्त्रिफालविषयमनोऽचनकाये
परिहृत्य कर्म मयं परम नोकार्यमवलम्बे ॥ ३२ ॥

अन्वय—(विनाशविषय) तीन काल सम्बन्धी (सर्व कर्म)
 * १। जो (मनोवचनमायै) मन वचन काय आर (वृत्त
 अनुसृतुनै) कृत्वा कालि अनुमोचना स (परिहृत्य) दूर कर में
 (१५२) अनेक (नैकर्म्य) कर्म शून्यता का (अवलम्बे)
 प्रयत्न करता हूँ ॥३२॥

(आर्या) २२६

मोहाद्यदहमकार्षं समस्तमपि कर्म तत्प्रतिकर्म्य
 आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावर्ते

अन्वय—(मोहात्) मोह से अथात् अज्ञान से (अहं) मैंने
 (दत्तम) जो कर्म (अकार्षन्) लिये (तत्समस्त अपि) उन
 * १। कर्मों का (प्रतिकर्म्य) प्रतिकर्मण कर (निष्कर्मणि) कर्मों
 १। शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य रूप (आत्मनि) आत्मा में
 (आत्मना) अथवा द्वारा (नित्य) निगन्तर (वर्तते) प्रवृत्ति करता
 हूँ ॥ ३३ ॥

(आर्या) २२७

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्ममफलमालोच्य
 आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावर्ते

अन्वय—(मोहविलासविजृम्भितम्) मोह के विलास से
 यदि जो प्राप्त हुए (उदयत्) उदय में आ रहे (३४) सफल कर्म
 आलोच्य) इन सम्पूर्ण कर्मों को आलोचना कर (निष्कर्मणि) कर्मों
 में शून्य (चैतन्यात्मनि) चैतन्य स्वरूप (आत्मनि) आत्मा में
 (आत्मना) अथवा द्वारा (नित्य वर्तते) निगन्तर प्रवृत्ति करता
 हूँ ॥ ३४ ॥

(१३७)

(आर्या) २०८

प्रत्यारयाय भविष्यत्कर्म ममस्त निरस्तसंमोह ।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मनावते

अन्वयाय—(भविष्यत्) आगामी (ममस्त कर्म) सम्पूर्ण कर्म
को (प्रत्यारयाय) ह्वात्सर (निरस्तसंमोह) मोह ॥ रहित
(निष्कर्मणि चैतन्यात्मनि) क्या न शून्य चैतन्य स्वरूप (आत्म न)
आत्मा मे (आत्मना नित्य वर्त) अगन द्वारा निरंतर प्रवृत्ति
करता हूँ ॥ ५॥

(उपजाति) २०९

समस्तमित्येवमपास्यकर्म—

त्रैकालिक शुद्धनयावलम्बी ।

विलीनमोहो रहित विकारै—

श्चिन्मात्रमात्मानमयाऽवलम्बे ॥३६॥

अन्वयाय—(इत्येव) एव प्रकार (समस्त त्रैकालिक कर्म
अपास्य) सम्पूर्ण तीन काल मरधा क्या को छोड़कर (शुद्ध
नयावलम्बी) शुद्ध नया का अग्रगण्य बन बनाना (विलीनमोह
विकारै) मोह से शून्य कर्म कृत विचार भ्रमा से (रहित) रहित
(चि मात्र आत्मान अयावलम्बे) चैतन्य स्वरूप आत्मा का अग्र
लम्बन करता हूँ ॥३६॥

(आर्या) २१०

प्रिगलन्तु कर्मविपतरुफलानि मम भुक्तिमतरेणैः
मचेतयेऽहमचल चैतन्यात्मानमात्मान ॥३७॥

अत्राय—(कर्मविषयफलानि) कर्म रूप निप नृन के फल
(मम भुक्ति अंतरयौव) मर भाग व भिना ही (विगलतु) गिर
जावे (अचल चेतयाहमान) निश्चल चैतय स्वल्प (आत्मान अह
सचेतय) आमा का म अनुभव करता हें ॥३७॥

(वसंततिलका) २३१

नि शेषकर्मफलसन्धमनात्ममेव,
मर्वक्रियान्तरविहारनिवृत्तवृत्ते ।
चैतन्यलक्ष्म भजतो भृशमात्मतत्त्व,
कालावलीयमचलस्य बहत्वनत ॥३८॥

अत्राय—(नि शेषकर्मफलसन्धमनासात्) समस्त कर्मों
के फल का त्याग हान मे (सवामयांतरविहारनिवृत्तवृत्ते)
ममा अन्य क्रियाया मे प्रवर्तन रूप न रहित वृत्ति जाने (चैतन्यलक्ष्म
आत्मतत्त्व भृश भजत) चैतन्य रूप आमा तय की अनिष्टय रूप न
अनुभव करने जाने (अचलस्य) निश्चल (मम) मेरे (इय) यह
(कालावलीयमचलस्य बहत्वनत) काल की आवाज अनंत काल
तर प्रवाह रूप मे बढ़ ॥३८॥

(वसंततिलका) २३२

य पूर्वभावकृतकर्मविषदुमाणा,
भुक्तेफलानि नखलु स्वत एव वृत्त ।
आपातकालरमणीयमुदरुर्मय,
निष्कर्मगर्ममयमेति दशान्तर म ॥३९॥

अवस्था—(य पूरमावृत्तकर्मनिष्ठदुःखा) जी पर पान
 में मिले गये कर्म रूप विर वृत्त के (फलानि) फलों की (स्वत न
 मुक्ते) निज बुद्धि से नहा भोगता (गलु) निश्चय म (स तृप्त
 पय) वह निज स्वस्व में मनु ही है (आपातफलरमणीय)
 प्रथम काल में ज्य म सुख (ज्यस्य निष्कमशमभयम्)
 भविष्य काल में मनोहर कमा में रहित सुख रूप (ज्यशः तरं गति)
 अन्त्यान्तर को प्राप्त करता है ॥३६॥

(सङ्घरा) - ३३

अत्यन्तभावयित्वाविरतमविरतकर्मणस्तत्फलाच्च
 प्रस्पष्टनाटयित्वाप्रलयनमखिलाज्ञानमचेतनाया
 पूर्णकृत्वाभ्यभावस्वरमपरिगतज्ञानसचेतना स्वा
 सानन्दनाटयत प्रशमरममित सर्वकालपिवन्तु

अवस्था—(फलण तत्फलाच्च) उक्त ॥ द्वार कर्मों के फल से
 (विरत) विरली को (अविरत) निरन्तर (अत्यन्त भवयित्वा)
 अनिश्चय रूप में भावना कर (अखिलज्ञानसचेतनाया) समस्त
 अज्ञान चेतना के (प्रलयनं प्रस्पष्ट नाटयित्वा) मिटाए को भना
 भौत नचा के (स्वरमपरिगत) निज रम में प्राप्त (स्वभाव)
 स्वभाव ना (पूर्णकृत्वा) पूर्ण कर्म (स्वा) अपनी (ज्ञान
 सचेतना) ज्ञान रूपी चेतना को (सानन्द) आनन्द सन्नि
 (नाटयत) नचाने हुए (इत) इस तरह से आगे (सर्वकाल)
 स । (प्रशमरस) प्रशम रूप रम को (पिवन्तु) लिये ॥६॥

इत पन्थाप्रयनावगुणठना—

द्विनाकृतेरेकमनाकुल ज्वलत् ।

समस्तवस्तुन्यतिरेकनिश्चया—

द्विवेचित ज्ञानमिहावतिष्ठते ॥४१॥

अव्याख्य—(इत) २ । म आग (पन्थाप्रयनावगुणठनान्)
प १०० के प्रमाण का १०० अन्न संरक्ष म (कुनविना) वस्तुत्पत्ति रूप
विना के विना (अनाकुल) निराकुल (समस्तवस्तुन्यतिरेक
निश्चयान्) समस्त पन्था म विज्ञान का निश्चय ज्ञान म (विषाचत)
प्रसर किया गया (एक ज्ञान) एक पान (इत) आमा मे (उरलन)
चमरना हुआ (अवतिष्ठते) स्थित रहता है ॥४१॥

(शास्त्रलविघ्नीहिन) ३५

अन्येभ्योन्यतिरिक्तमात्मनियतमिभ्रत्प्रथक्वस्तुता-

मादानोऽभक्तशून्यमेतदमल ज्ञाने तथावस्थितम्

मध्याद्यन्तविभागमुक्तमहजस्फारप्रभाभासुर

शुद्धज्ञानधनो यथास्यमहिमानित्योदितस्तिष्ठति

अव्याख्य—(अन्येभ्यः अन्यतिरिक्त) अन्य पन्था म अन्यन्त
मित्र (आत्मनियत) आमा मे निश्चित (वस्तुताम्) वस्तुता को
अज्ञान गानान्तर विषयमयता का (प्रथक्विभ्रत्) मित्र रूप म धाग्य
करना हुआ (आदानोऽभक्तशून्य) अज्ञान और ज्ञान मे रहित
(अमल) निमल (एतत् ज्ञान) एक पान (तथावस्थितम्) उमी

प्रकार मे अवस्थित है (यथा) जिस प्रकार से (अस्य) इसकी
 (मध्याय तद्विभागमुक्तमहजस्फारप्रभाभामुर) मध्य आर्ति श्री
 अत रूप विभाग मे ज्ञाय म्याभादिक विद्यान प्रभा मे प्रगोशमान
 (शुद्धमानघन) शुद्ध शान घन रूप (नित्यान्ति) निरन्तर
 प्रगोशमान (महिमा तिष्ठति) महिमा स्थित रहता है ॥४॥

(उपजाति) २३६

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्
 यदात्मन महत्तममशक्तं पूर्णस्य सधारणमात्मनीह

अन्वय—(यत् उन्मोच्य) जो लोडन पात्र था (तत् अशेषतः
 उन्मुक्त) वह परिपूर्ण रूप ॥ छान गता (तथा) वैसे ही (यत्
 आन्वय) वा प्रमाण करने योग्य था (तत् अशेषतः आत्त) वह
 समग्र रूप मे ग्रहण किया गया (महत्तममशक्तं) एकद्विती को चुकी
 है समग्र शक्तिय विमर्श गता (पूर्णस्य आत्मन) पात्रपूर्ण आत्मा को
 (उह आत्मनि सधारण भवति) इस आत्मा मे धारण करना
 होता है ॥४॥

(अनुदुष) २३७

व्यतिरिक्त परद्रव्यादव ज्ञानमवस्थितम् ।

कथमाहारक तत्स्याद्ये न देहोस्य शक्यते ॥४४॥

अन्वय—(एव परद्रव्यात्) इस प्रकार परद्रव्य मे (व्यति
 रिक्त) मर्यादा प्रत्यक्ष (ज्ञान अवस्थितम्) ज्ञान स्थित हुआ (तत्
 आहारक) वह ज्ञान कम आत्मा जो हम दृग्गोचरी को ग्रहण करने वाला
 (कथं स्यात्) कम ही भवता है (यत् अस्य देह शक्यते) जिसमे
 इस ज्ञान में शरीर की गता की जा सके ॥४४॥

(अनुष्टुप) २२=

एव ज्ञानस्य शुद्धस्य देह एव न विद्यते ।

ततो देहमयं ज्ञातुर्नलिग मोक्षकारणम् ॥४५॥

अन्वयाथ—(एव शुद्धस्य ज्ञानस्य देह एव न विद्यते) इमं तरह तु ज्ञान के शरीर हा नहीं है (तत ज्ञातु देहमय लिग मोक्ष कारण न भवति) इम कारण ज्ञान अर्थात् आत्मा का शरीर रूप लिग मोक्ष का कारण नहीं हा मरना ॥४५॥

(अनुष्टुप) २२६

दर्शनज्ञानचारित्रयात्मा तत्त्वमात्मनः ।

एक एव मदा सेव्यो मोक्षमार्गो मुमुक्षुणा ॥४६॥

अन्वयाथ—(आत्मन मदा दर्शनज्ञानचारित्रयात्मा) आत्मा का स्वरूप दर्शन ज्ञान और चारित्र इन ताना का एक रूप है मनुष्य (मुमुक्षुणा) मोक्ष को चान्न बाने (मदा) मरणा (एक एव) एक ही (मोक्षमार्ग) सेव्य) मोक्षमार्ग का मरना कर ॥४६॥

(शार्ङ्गलत्रिकीदित) २५०

एको मोक्षपथो य एपनियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक
स्तत्रैवस्थितिमेति यस्तमनिशब्ध्यायेच्चत चेतति
तस्मिन्नेवनिरतरविहरति द्रव्यान्तरागयस्पृशन्
मोऽवश्य समयस्यमागमचिरान्नित्योदय विन्दति

अन्वयाथ—(य) जो (एव) यह (दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक) दर्शन ज्ञान और चारित्र रूप (एक मोक्षपथ) एक मोक्ष का मार्ग (नियत

अरित) निश्चित है (तत्रैव) जमी में ही (अः स्थिति गति) जो स्थिति को प्राप्त करता है (अनिश त ध्यायन्) निरंतर जमा ध्यान करता है (च) और (तं) जमा का (चेतनि) चितन करना है (द्रव्यांतराणि अम्पुजान्) अन्य द्रव्यां स स्पर्श नहा करते हुए (तस्मिन्मघ) उन्नी में ही निरंतर) निरंतर (विहरति) विहार करता है (सः नित्योऽन्य समयस्थसारं) वह निरंतर उत्पन्न आत्मा के सार को (अचिरान्) क्षीम ही (अवश्य विन्दति) अवश्य प्राप्त करता है ॥४७॥

(शादु लयिमीडित) -४१

येत्नेन परिहृत्य सवतिपथप्रस्थापितेनात्मना
लिगे द्रव्यमये वहन्तिममतां तत्त्वावबोधच्युता
नित्योद्योतमसण्डमेकमतुलालोक स्वभावप्रभा-
प्राग्भार समयस्थसारममल नाद्यापि पश्यन्ति ते

अन्वयाथ—(ये) जो पुरुष (एन) हम मानमात्र को (तु) तो (परि हृत्य) छाड़ कर (सवतिपथप्रस्थापितेन) समाप्तीन "व" हार माता म स्थापित हुए (आत्माना) अपने द्वारा (द्रव्यमय लिगे) समता वहन्ति) द्रव्यमय वय में ममता का धारण करते हैं (त) वे (तत्त्वावबोधच्युता) तत्त्वज्ञान में शून्य होते हुए (नित्योद्योत असण्ड) निरंतर प्रकाशमान असण्ड (एक अतुलालोकम् स्वभावप्रभाप्राग्भार) एक अतुलम प्रकाश वात स्वभाव की कान्ति में अत्यन्त अमल (अमल समयस्थसारं अद्यापि न पश्यति) निमल आत्मा के सार को आज तक भी नहा वेन्त है ।

(त्रियोगनी) -४२

व्यग्रहारनिमूढदृष्टय परमार्थं कलयन्ति नो जना
तुपबोधविमुग्धबुद्धय कलयन्तीदृत्तुप न तदुलम्

अवयव—(व्यवहारविमूढप्रत्यय) व्यवहार म विमूढ ही जाने
(जना) मनुष्य (परमार्थ) परमाथ का (नो कलयति) नहीं जानते हैं
(इह) इस लोक में (तुषबोधविमूढप्रत्यय) तुष म ही तदुल
के ज्ञान मे विमूढ बुद्धि बान (तुष) तुष को (नदुल कलयति) तदुल
जानत है (तदुल) तदुल का (न कलयति) तदुल नहीं जानते ॥४८॥

(व्यागता) ८४३

द्रव्यलिङ्गममकारमीलितैर्दृश्यते समयमारणव न
द्रव्यलिङ्गमिहयत्किलान्यतो ज्ञानमेकमिदमेव हि स्वत

अवयव—(द्रव्यलिङ्गममकारमीलितै) द्रव्यलिङ्ग म ममत्व बुद्धि
म अध (समयमार एव न दृश्यत) आत्मा व सार का ही नहा देखते
(इह) इस लोक में (यत् द्रव्यलिङ्ग) वो द्रव्यलिङ्ग है (तत्तु) व तो
(कथयत एव भवति) अन्य द्रव्य मे हा होना है और (इह) यह
(एक ज्ञान) एक ज्ञान (हि) निश्चय कर (दृश्यत एव भवति) आमा
म हा जाता है ॥४९॥

(मालिना) ८४४

अलमलमतिजल्पे दुर्विकल्पैरनल्पै ।
रयमिह परमार्थश्चिन्त्यता नित्यमेक ॥
स्वरमविमरपूर्णज्ञानविस्फूर्तिमात्रा ।
न्न रसलु समयमारा दुत्तरकिञ्चिदस्ति ॥

अवयव—(अनल्पै) बहुत (अनिजल्पै) ज्यादा बकान और
(दुर्विकल्पै) दुर्विकल्प (अल अलं) व्यथ है व्यथ है (एव) इस समय-
सार प्रथ मे (अथ एक) य एक (परमार्थ) परमाथ का (नित्य

चित्यता) निरत चित्तजन कर्मा चादि (स्वरमन्त्रिमरपूर्णज्ञान
विस्फूर्तिमात्रात्) निव रत ने पैला रूप और पुनर्जन म म्पुरापमान
(समयसारान्) समस्तार स (चत्तर) अग्नि र (गलु) और (विधिन्
नास्ति) कुछ भी नहीं है ॥५१॥

(अनुष्टुप) - ५५

इदमेक जगन्चक्षुरक्षय याति पूर्णताम् ।

विज्ञानधनमानदमयमध्यक्षता नयत् ॥५२॥

अन्वय—(इ) यह समय प्राभनशान्त्र (अक्षय) अग्निशरी (गर्) एक
अमाधारण (जगत्चक्षु) जगत् न न रूप (विज्ञानधन) विज्ञान
धन (आनन्दस्य) आनन्दमय मन्यमार का (अध्यक्षता नयत्) प्रयत्न
कराना हुआ (पूर्णता याति) पूर्णता का प्राप्ति हो । इ ॥५२॥

(अनुष्टुप) - ४१

इतीदमात्मनस्तत्त ज्ञानमात्रमस्थित ।

अखण्डमेकमचल स्वसवेद्यमगाधितम् ॥५३॥

अन्वय—(इति) इस प्रकार (ए) आत्मन) यह आत्मा का
(तत्त) स्वरूप (ज्ञानमात्र) ज्ञानप्रमाण (अवस्थित) निश्चित हुआ जो
(अखण्ड) अखण्ड है (एक) एक ही (अचल) निश्चल है (स्वसवेद्य)
स्वमन्त्र है और (अगाधित) बाधा क राहित है ॥५३॥

इति सप्त त्रिशुद्धि अधिपार

॥ अथ परिशिष्टाध्याय आरभ्यत ॥

(अनुष्टुप) २४७

अत्र स्याद्वादशुद्ध्यर्थं वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिः ।

उपायोपेयभावश्च मनाग्भूयोऽपि चित्यते ॥१॥

अन्वय—(अत्र) इमं अधिगमं मं (स्याद्वाङ्मयुद्धं) स्याद्वा
की गुडि के लिए (उन्मुक्तत्वव्यवस्थिति) वस्तु स्वरूप की व्यवस्था
का (च) और (उपायोपेयभाव) जन में उत्पन्न भाव और तत्त्व भाव
का (मनागपि भूय) यात्रा का भी अनिष्टाव रूप में (चिंत्यत)
विचार करे ॥१॥

(शास्त्रालिखितोद्धृत) २५८

वाह्यार्थे परिपातमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभव
द्विश्रान्तपररूप एवपरितो ज्ञानपणो मीढति ॥
यत्तत्तद्विह स्वरूपतद्वति स्याद्वादिनस्तत्पुन ।
दूरोन्मग्नघनस्वभावभक्त पूर्णं समुन्मज्जति ॥

अन्वय—(पणो) अगती अथात् एकान्तता के का (यन् ज्ञान)
का ज्ञान (वाह्यार्थे) निभूत पणया मं (परिपीत) विचार गया है परिपूर्ण
रूप में (उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्) एवम् इह अगती विश्रान्ताया
मं ज्ञान होता हुआ (परितो) मव तत्त्व मं (पररूपगत्) पर रूप में है
(विश्रान्त) स्तिर का प्राप्त हुआ (तत्) वह ज्ञान (मीढति) नष्ट हो जाता
है (स्याद्वादिन) लेभिन् स्याद्वादिन कं (तत्) वह ज्ञान (नह) इस आत्मा
मं (स्वरूपत) स्वरूप में है (तत्) यह ज्ञान (तत्) निरूप दे (नति)
इस प्रकाश (पुन तत्) और वह ज्ञान (दूरोन्मग्नघनस्वभावभक्त)
अनिष्टाव रूप में प्रकाश घनस्वभाव के समूह में (पूर्ण) पाएँगा रूप ॥
(समुन्मज्जति) नीचे रटना है ॥ ॥

(शास्त्रालिखितोद्धृत) २५९

विश्व ज्ञानमिति प्रतर्क्यमकलदृष्टास्तत्त्वाशया
भूत्वाविश्वमय पशु पशुरिव १५७६

यत्तत्पररूपतो न तदिति म्याद्वाददर्शीपुन—
विश्याद्विन्नमविश्वविश्वघटित तस्यस्वतत्त्व स्पृशेत्

अन्वयाय—(पशु) अज्ञानी एकात्म्या (विश्व) समस्त पदार्थों को (ज्ञान) ज्ञान रूप है (ज्ञान) ऐसा (प्रत्यक्ष) तत्त्वज्ञान (समस्त) सम्पूर्ण ज्ञात को (स्वतत्त्वाशया) निजन्तर की आशा से (मृग्य) देख कर (विश्वमय) समस्त पदार्थरूप (भूतया) हानर (पशुइव) पशु के समान (स्वच्छन्द) स्वच्छन्द रूप में (आचेष्टते) चंग करता है (पुन) फिर (स्याद्वाददर्शी) स्याद्वाद में बन्धुत्व को देखन आता (यत्) जो ज्ञान (पररूपत) पररूप में होना है (तत्) वह ज्ञान (तत् न) ठीक अध्यात्मान ज्ञान नहीं है (इति) इस प्रकार (विश्याम भिन्नम्) समस्त पदार्थों से भिन्न (विश्वघटित) समस्त पदार्थों से घटित होता हुआ भी (अविश्व) समस्त पदार्थरूप नहीं तो भा (तस्य) उस पदार्थ के समुदाय रूप (स्वतत्त्वा) निजन्तर की (स्पृशेत्) अनुभव करता है ॥१॥

(शादूलनिप्रीडित) २५०

वाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्निचित्रोल्लसद् ।
ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति ॥
एकद्रव्यतयामदाव्युदितयामेदमभ्रमध्वसयन् ।
नेव ज्ञानमवाधितानुभवन पश्यत्यनेकान्तवित् ॥

अन्वयाय—(पशु) अज्ञानी एकात्म्या (वाह्यार्थग्रहणस्वभाव भरत) वाच्यपदार्थों के ग्रहण रूप समान के भावसे (विष्वग्निचित्रो ललसत्) ज्ञेयाकारविशीर्णशक्ति) समस्त नाना प्रकार से शोभमान पदार्थों के आकार में नष्ट हो गई है शक्ति बिलकी एसा होना हुआ

(अभिन्न) तत्र तद्वत् से (सुदृश्यन्) दृग्ता हुआ (नश्यति) नष्ट हो जाता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्तवाणी श्रुती तो (एकद्रव्यतया) एक द्रव्य से (सदा) निरंतर (अव्युदितया) उद्भूत रहने से (भेदभ्रम) भेद के भ्रम को (ध्वंसयत्) नाश करते हुए (एक) एक (अभाविना सुभवन) बाधा रहित है अनुमय श्रुति एव (ज्ञानं न पश्यति) ज्ञान को नहीं देखता ॥८॥

(शास्त्रोक्तप्रसिद्धि) ५१

ज्ञेयाकारकलकमेवचचितिप्रक्षालन कल्पयन्
नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञान पशुर्नेच्छति
वैचिन्येऽप्यविचित्रतामुपगत ज्ञानस्वत जालित
पर्यायैस्तदनेकता परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित्

अन्वयार्थ—(पशु) अज्ञाना एकान्तवाणी (ज्ञेयाकारकलकमेव चचिति) नेप पदार्थों के आकारों से कलक को प्राप्त हुए अनन्त आकार रूप से मिलित चैतन्य में (एकाकारचिकीर्षया) एक रसतत्त्वस्वरूप आकार का वर्णन की इच्छा से अनेक आकारों के (प्रक्षालन कल्पयन्) प्रक्षालन को करता हुआ (स्फुट ज्ञान अपि नच्छति) अनेक आकाररूप स्वरूप ज्ञान का भाव नहीं चाहता अर्थात् ज्ञान का नाश करता है (अनेकान्तवित्) अनेकान्त के स्वरूप का ज्ञान स्थापना (वैचित्र्येऽपि अविचित्रता) अनेकाकाररूप में विविध होने पर भी एकात्मता को (उपगत) प्राप्त हुए (स्वत जालित पर्यायै अनेकता) स्वयमेव शुद्ध किये गये पदार्थ में अनेकाकारता से (तत् ज्ञान परिमृशन् पश्यति) उस ज्ञान का भ्रम करता हुआ अनुमय करता है ॥५॥

(शास्त्रलघिनीदित) २१०

प्रत्यक्षालिसितस्फुटस्विरपरद्रव्यास्तितानचित
 स्वद्रव्यानवलाकनेन गरित शून्य पशुर्नश्यति
 स्वद्रव्यास्तितयानिरूप्यनिपुणमत्र ममुन्मज्जता
 स्याद्वादीतुविशुद्धबोधमहमा पूर्णाभवन्जीवति

अत्राय—(पशु) ज्ञानां मया प्रकान्तया (प्रत्यक्षालिसित
 स्फुटस्विरपरद्रव्यास्तितानचित) प्रयत्न प्रमाण म चित्रलिखित
 स्पष्ट और निश्चित पर द्रव्य के आन्तर से दृष्टाया गया (स्वद्रव्यानव
 लोचनन) अनेक आमतः के अन्तर का नष्ट देखने ॥ (परित)
 परिपूर्ण रूप से (शून्य) शून्य होता हुआ (नश्यति) नाश को प्राप्त
 होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादीतो (स्वद्रव्यास्तितया) अनेक आम
 द्रव्य के अन्तर्गत म (निपुण) मन्त्रावापि (निष्पद्य) आमद्रव्य को
 देखकर (मत्र) ज्ञान समय ही (ममुन्मज्जता) प्रगट हो गई (विशुद्ध
 बोधमहमा) निमलजनरूप तब स (पूर्णाभवन् जीवति) परिपूर्ण होता
 हुआ जानि रहता है अर्थात् नाश को प्राप्त नष्ट होता ॥५॥

(शास्त्रलघिकादित) २४३

सर्वद्रव्यमय प्रपद्य पुरुष दुर्वामनावामित ।
 स्वद्रव्यभ्रमत पशु किलपद्रव्येषु विश्राम्यति
 स्याद्वादीतुसमस्तस्तुषु परद्रव्यात्मनानास्तितान्
 जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमास्वद्रव्यमेवाश्रयेत् ॥

अत्राय—(पशु) अगनी सखा एकान्तगती (पुरुष) आत्मा को (मच्च द्रव्यमय प्रपद्य) सम्पूर्ण द्रव्यमय स्वाधार कर (दुर्वसिनादासित) दुनय की वाचना से वाग्नि होता हुआ (स्वद्रव्यभ्रमत) अपने आत्मद्रव्य के भ्रम से (परद्रव्येषु किल त्रिधाम्यति) पर द्रव्यों में प्रत्येक स विधाम करता है अयान् पर में ही अवनत्य को मानता है (स्याद्वात्मा तु समस्त यस्तु पु) स्याद्वात्मा तो समस्त पण्यों में (परद्रव्यात्मना) परद्रव्यरूप से आत्मद्रव्य को (नास्तिता जानन्न) नास्तिता को अयात् अभार को जानता हुआ (निमलशुद्धबोधमहिमा) निर्मल शुद्ध ज्ञान की है महिमा हिमम एते (स्वद्रव्य आभयेन्) निज द्रव्य का ही आनन्द लेता है ॥७॥

(शार्दूललिपीदित) २५४

भिन्नक्षेत्रणिपणवोध्यनियतव्यापारनिष्ठ सदा
सीदत्येव बहि पतन्तमभित पश्यन्पुमास पशु
स्वक्षेत्रास्तितया निरुद्धरभस स्याद्वादवेदीपुन-
स्तिष्ठत्यात्मनि स्वातवोध्यनियतव्यापारशक्तिर्भवन्

अन्वयाय—(पशु) अगनी सखा एकान्तगती (भिन्नक्षेत्रणि पणवोध्यनियतव्यापारनिष्ठ) भिन्न क्षेत्र में स्थित होय पण्यों के निश्चित होय शक्ति सत्त्वरूप व्यापार में स्थित होता हुआ (बहि) इस पण्यों में (अभित) समग्ररूप से (पतन्त) गिरने वाले पुमास) आत्मा को (पश्यन्) देखता हुआ (सदीय) हमसा ही सीदति) दुग्री होता है (पुन स्याद्वादवेदी) किन्तु स्याद्वात् का जाने वाला (स्वक्षेत्रास्तितया) अपने क्षेत्र में अपने अस्तित्व के द्वारा निरुद्धरभस) अपने वेग को रतने से (आत्मनि स्वातवोध्य नयत्त व्यापारशक्ति) अपने क्षेत्र में ही जयपण्यों के निश्चित जय

जायिष मन्त्रधरूप पापाग्रूप शक्ति वाला (भयन् निष्ठति) होता हुआ स्थित रहता है ॥ ८ ॥

(शार्दूलनिर्णीत) २४४

स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितायोऽङ्गना
तुच्छीभूयपशु प्रणश्यतिचिदाकारात्सहावैर्वमन्
स्याद्वादी तु वमनस्वधामनिपरक्षेत्रेविदन्नास्तिता
त्यक्ताथोऽपि न तुच्छतामनुभवत्याकाररूपीपरान्

अन्वय—(पशु) अङ्गना मर्या पशुनाम् । (स्वक्षेत्रस्थितये पृथग्विधिपरक्षेत्रस्थितायोऽङ्गनाम्) अपन क्षेत्र में स्थित होने के लिये मित्र मित्र विमान वाते पर क्षेत्र में स्थित रहने वाले पशुओं को छोड़ने में (तुच्छ भूय) तुच्छ होकर (चिदाकारात्) चतुरस्र पशुओं के आकारों को (अर्थे सद् वमन्) पर पशुओं के साथ वमन करता हुआ अथवा छोड़ता हुआ (प्रणश्यति) नाश को प्राप्त होता है (स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (स्वधामिनि वसन्) अपन क्षेत्र में निवास करता हुआ (परक्षेत्रे नास्तिता विदन्) पर पशुओं के क्षेत्र में अपन आसन्न क्षेत्र के अभार को जानता हुआ (त्यक्ताथा अपि) पर पशुओं को छोड़ता हुआ भी (परन्त्रकाररूपी) पर पशुओं के आकार को छोड़ता हुआ (तुच्छता न अनुभवति) तुच्छता का अनुभव नहीं करता है ॥ ८ ॥

(शार्दूलनिर्णीत) २४६

पूर्वालम्बितयोऽभ्यर्नाशसमये ज्ञानस्य नाश विदन्
मीदत्येव न किञ्चनापि कलयन्त्यन्ततुच्छपशु

अस्तित्वनिजकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदीपुन
पूर्णस्तिष्ठति ग्राह्यस्तुपु मुहुर्भूत्वा विनश्यत्स्वपि

अन्यथा—(पशु) अजना सर्पथा एकात्मना । (पूर्वालम्बित
घोष्यनाशममये) पुन समय में आलम्बन को प्राप्त हुए पशुओं के
नाश के समय में (ज्ञानस्य नाश त्रिदश) शन के नाश को जानता हुआ
(विचिन्तापि न कलयन्) शर कुट्ट मा नहा जानता हुआ (अस्यैत
तुष्ट सन) अन्यतस्तुप्त होता हुआ (सीदति मय) दुःख हा हाता है
(पुन स्याद्वादवेदी) विलु स्याद्वाद का अनन धारा (निजकालत)
अपने समय में (अस्य अस्तित्व कलयन्) इस आत्मा के अस्तित्व का
जानता हुआ (वाद्यस्तुपु) वाद्य पशुओं में (मुहुर्भूत्वा) बार बार
उत्पन्न होकर (विनश्यत्स्वपि) नाश को प्राप्त होने पर भी (पूर्ण स्तिष्ठति)
परिपूर्ण रूप में स्थित रहता है ॥ २० ॥

(शार्ङ्गलविक्राडित) २८७

अर्थालम्बनकाल एव कलयन् ज्ञानस्य मत्त्व वहि
ज्ञेयालम्बनलालसेन मनमा भ्राम्यन्पशुर्नश्यति
नास्तित्वपरकालतोऽस्य कलयन् स्याद्वादवेदीपुन
स्तिष्ठत्यात्मनिसातनित्यमहजज्ञानैरुपुर्जीभयन्

अन्यथा—(पशु) अजनी सर्पथा एकात्मना । (अर्थालम्बन
काले) पदार्थों के आलम्बन के समय में (एव) ही (ज्ञानस्य मत्त्व
कलयन्) शन के मद्भावन को जानता हुआ (यहिज्ञेयालम्बनलाल
सेनमनसा) कल्पपशुओं के आलम्बन ॥ अनुसारी विल स (भ्राम्यन्
नश्यति) भ्रमण करना हुआ नाश को प्राप्त होता है (पुन स्याद्वाद

वेणी) किन्तु आशा का ज्ञान ज्ञान (परकालन) पर द्रव्य के सम
में (अस्य नास्तित्वं कलवन्) अपने आम द्रव्य के अस्तित्वाभास का
ज्ञान हुआ (स्वातन्त्र्यसहजज्ञानेऽपि जीभवन्) अपने में स्थित
निय अविनाशा स्वामात्रि ज्ञान का एक पुत्र होता हुआ (आत्मनि
निष्ठति) अपने में ही स्थित रहता है ॥ ११ ॥

(शार्दूलविम्वीरिन) २४८

विश्रान्त परभावभावकलनान्नित्यवर्तिर्वस्तुषु ।
नश्यत्येवमपि स्वभावमहिम्न्येकान्तनिश्चेतन ॥
सर्वस्मान्नियतस्वभावमभवन् ज्ञानाद्विभक्तोभवन्
स्याद्वादीतु न नाशमिति सहजस्पष्टीकृतप्रत्यय १२

अन्वयात्—(मशु) अज्ञानी मर्यादा परान्तर्गता (परभावभाव
कलनात्) पर पण्यों के भास में निज अनुभव के ज्ञान से (नित्य)
निरंतर (बहियन्तुषु) बाह्य वस्तुओं में (विधान) निराम करता
हुआ (स्वभावमहिम्नि) निज भास में महिमा में (एकान्तनिश्चेतन)
एकांत रूप में नष्ट होता हुआ (नश्यत्येवमपि) नाश का ही प्राप्त करता है
(स्याद्वादीतु) स्याद्वादी तो (सर्वस्मान्) सभी पण्यों में (नियत
स्वभावमभवन् ज्ञानात्) विधित अपने अपने भावों के उत्पन्न होने
रूप रूप में (विभक्तो भवन्) प्रकट होता हुआ (सहजस्पष्टीकृत
प्रत्यय) स्वभावमहिम्नि ॥ यत्तु किं गत्यं ज्ञान रूप होने का (नाश) नाश
का (ज एति) प्राप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

(शार्दूलविम्वीरिन) २४९

अथास्यात्मनिमयेभावमयनशुद्धस्वभावव्युत्त
मर्वात्राप्यनिवारितोगतभय स्वैरपि क्रीडति

स्याद्वादीतुविशुद्धएवतमति स्वस्य स्वभावंभरा-
दारूढ परभाउभाउविरहव्यालोकनिष्कपित. ११३

अन्यार्थ (पशु) अजानी मर्यादा प्रकाशवा (सत्रभाउभवन)
समस्त पर पशुओं के भावों की उत्पत्ति का (आत्मनि) अपने आत्म
इय में (अध्यात्म) निश्चयकर (शुद्धस्वभावच्युत) अपने आत्मा
के शुद्ध स्वभाव से च्युत हुआ (सर्वात्रापि) सभी अन्य पशुओं में
(अनिवारित) बेव्याप (गन्धभय) निश्चय हो (स्वर) इ वाद
मा (प्रीति) कृपा कृपा है (स्याद्वादी तु स्वस्य स्वभावा भरात्)
स्याद्वादी ता अत्र स्वभाव के भाव से (आरूढ) स्थित हुआ (पर-
भाउभाउविरहव्यालोकनिष्कपित । पर पशुओं के भावों का
अपने भाव से अभाव को दग्ध करने निश्चय हुआ (विशुद्ध एव तमति)
विशुद्ध रूप में ही शोभित होता है ॥ ११३ ॥

(शाद्वलविप्रीडित) - ६०

प्रादुर्भावविराममुद्रितवहद् ज्ञानागनानात्मना
निर्ज्ञानात्क्षणभगमगपतित प्राय पशुर्नश्यति
स्याद्वादीतुचिदात्मनापरिमृश श्रिद्धस्तुनित्योदित
टकोत्कीर्णधनस्वभाउमहिमज्ञानभवन्जीवति ११४

अन्यार्थ—(पशु) अजानी मर्यादा प्रकाशवा (प्रादुर्भाव
विराममुद्रितवहद् ज्ञानागनानात्मना निर्ज्ञानात्) नश्यति श्री
विनाशरूप मृत्यु के धाम जान के अशा में जाना मरणा के नि-
शान में (क्षणभगमगपतित) क्षण भर में मरणा में प-
(शयन नश्यति) शयन को प्राप्त होता है (

स्यान्न तो (त्रिआत्मनानित्योक्तिः) चतुर्थ्य से निम्न उदम्भ्य
(चिद्वस्तु परिमृशन्) चतुर्थमहं आत्म इत्येक का निश्चय कृता हुआ
(टकोत्कीर्णविशुद्धबोधविमराकारात्मतत्त्वाशया
वाञ्छत्युच्छलदच्छचित्तरिणतेभिन्नपशु किञ्चन
ज्ञाननित्यमनित्यतापरिगमेऽप्यामादयत्युज्ज्वल
स्याद्वादीतदनित्यतापरिमृशश्चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात् १५

(शास्त्रलक्षितः) २६१

अत्रार्थ—(पशु) अग्नी मर्यादाकालाग्नी (टकोत्कीर्ण
विशुद्धबोधविमराकारात्मतत्त्वाशया । तत्त्वार्थेण निमित्त ज्ञान के
फलार्थ रूप आकार स्वल्प आत्म तत्त्व ही आशा में (उच्छलदच्छचित्तरिणते
परिणत) उज्ज्वलता इत्येक स्वल्प चतुर्थ्य की परिगणित में (भिन्न निश्चयन)
भिन्न गिनी इत्येक आत्म इत्येक (वाञ्छति) चाहता है (स्याद्वादीतु)
स्यात् । ना (नित्य ज्ञान अनित्यता परिगम अपि) निम्न ज्ञान के
अविद्यता की प्राप्त ज्ञान पर भी (चिद्वस्तुवृत्तिक्रमात्) चतुर्थ द्रव्य
की प्रज्ञान के रूप में (नन् अनित्यता) आ ज्ञान ही अविद्यता की
(परिमृशन्) निश्चय कृता हुआ (उच्छल आसादयति) निमित्त
ज्ञान का है स्वीकार किया है ॥१५॥

(अनुगुण) २६२

इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रमादयन् ।

आत्मतत्त्वमनेकान्तं स्वयमेवानुभूयते ॥१६॥

अन्यार्थ—(इति) इति ५३ (अन्तर्बन्धनम्) इति ५३
 ज्ञानोह को प्राप्त हुए प्रत्येक के (अन्तर्बन्धनम्) अन्तर्बन्धन को
 (ज्ञानमात्रं) एवं स्वयम् (प्रमत्तम्) अन्तर्बन्धन (अन्तर्बन्धनम्)
 अनेकान्त सिद्धान्त (स्वयमेव) अन्तर्बन्धन (अन्तर्बन्धनम्) अन्तर्बन्धन
 आता है ॥१६॥

(अनुद्वन्द्वम्) २३

एतत्त्वयवस्थित्या स्वव्यवस्थापदन्वयम् ।

अलव्यशामन जैनमनेदन्तो न्यवस्थित ॥१७॥

अवस्थाप—(एव तत्त्वव्यवस्थित्या) एव तत्त्व तत्त्व के तत्त्व
 स्वरूप की अवस्था में (स्वयमेव) स्वयमेव (स्व) अन्तर्बन्धनम्
 (व्यवस्थापयन) अन्तर्बन्धनम् अन्तर्बन्धनम् (अन्तर्बन्धनम्) अन्तर्बन्धनम्
 अवस्था (जैन शासन) अन्तर्बन्धनम् (अन्तर्बन्धनम्) अन्तर्बन्धनम्
 अन्तर्बन्धन रूप में अवस्था ॥१७॥

(उन्मत्तवृद्धा) २४

इत्याद्यनेकनिजगत्तिमुनिर्मगऽपि—

यो ज्ञानमात्रमयता न जहाति भाः

एव कनाक्रमविवर्तिविवर्तविवर्त—

(न जहानि) नहीं छोटा है (एव क्रमाक्रमविचर्तिविचर्तचित्रं)
 इस प्रकार मम आरम्भ से होने वाले परिणामों से विचित्र (द्रव्यपर्यय
 मय) द्रव्य और पथाय स्वल्प (चित्) चतुर्गम्य (तत्) वह शन
 मय (वस्तु) -म्बु (इह अस्ति) -म लोभ म ह ॥१८॥

(वमतनिलता) २६४

नैकान्तसगतदृशा स्वयमेव वस्तु
 तत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोक्यन्त
 स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ।
 ज्ञानी भवन्ति जिननीतिमलघयन्त ॥१९॥

अन्वय—(स्वयमेव) यह वस्तु स्वयमेव (नैकांतसगत
 दृशा) अज्ञान रूप से प्राप्त हुए ज्ञान के द्वारा (इति) इस प्रकार
 (वस्तुतत्त्वव्यवस्थिति) -म्बु तत्त्व का स्वयमेव का (प्रविलोक-
 यन्त) देखने वाले (सन्त) जिनसे (अधिक) अधिक (स्याद्वाद-
 शुद्धि) स्याद्वाद का शुद्धि का (अधिगम्य) जानकर (जिननीति)
 जिननेत्रों के अनेकान्त मित्रों को (अलघयन्त) अलघयन कर
 करण हुए (ज्ञानी भवन्ति) जनी होते हैं ॥१९॥

(वमतनिलता) २६५

ये ज्ञानमात्रनिजभावमर्यामरुम्पा ।
 नमि श्रयन्ति कथमप्यपनीत मोहा ॥
 (अर्जुन) -न्ति सिद्धा ।

इत्यज्ञाननिमूढाना ज्ञानमात्र ॥ २० ॥
 यात्मतत्त्वमनेरान्त स्वयमेवानुभवा

अत्राय—(अपनीवमोहा) मोह गन्ति (ये) जो पुरुष
(ज्ञानमात्रनिष्ठाभारमयी) जन स्वरूप निज स्वभाव वाला
(अकम्पा) अचिन्ता (भूमि) भूमि को (यथमपि) किसी भी
प्रकार से (श्रयति) आश्रय करते हैं (ते) वे पुरुष (साधकत्वरम्
अधिगम्य) साधकपने को स्वीकार कर (सिद्धा मयति) सिद्ध प्राप्त है
(मृतास्तु) अगली मिथ्यादृष्टि ता (अमूम) इस भूमि को (अनु
पलभ्य) किता प्राप्त किया हो (परिभ्रमति) पराभ्रमण करने है ॥ ०॥

(वसततिलका) = ६७

स्याद्वाङ्मौलसुनिश्चलमयमाभ्या ।

यो भावयत्यहरह स्मिहोपयुक्तः ॥

ज्ञानक्रियानयपरस्पर्शीत्रमेत्री—

पात्रीकृत श्रयति भूमिमिमां स एक ॥२१॥

अत्राय—(य) जो पुरुष (इह) निज आत्म इत्यम (उप
युक्त) लगा हुआ (अहरह) प्रति ममर (स्याद्वाङ्मौलसुनिश्चल
मयमाभ्या) स्याद्वाङ् की कुशलता और निश्चल आश्रित म
(स्त्री) अयन आमा का (भावयति) अनुभव करता है (स एक)
यह एक (ज्ञानाक्रियानयपरस्पर्शीत्रमेत्रीपात्रीकृत) जन
रूप नय और क्रिया नयों में एक होने की बड़ी मित्रता के योग्य की ग
(इमा) यह निज भाव रूप (भूमि) भूमि का (श्रयति) आश्रय
करता है ॥ २॥

(उमततिलका) = ६८

चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहास

शुद्ध प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभात ॥

आनन्दसुस्थितसदास्वलितैररूप—

स्तस्यैव त्रायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२२॥

अर्थ—(तस्यैव) उस पुरुष के ही । चित्पिण्डचण्डि
मधिलामिरिकासहास) चैतन्य के पिण्ड का प्रचण्ड है विलास
जिनमें ऐसे प्रकाश रूप राम बाला (शुद्ध प्रकाशभरनिर्भर
सुप्रभात) शुद्ध प्रकाश के भाग में भरे हुए उत्तम प्राण राज के तुल्य
(आनन्दसुस्थितसदास्वलितैररूप) आनन्द से भलोभावि
निरन्तर निराला एत रूप बाला (त्राय अचलार्चि) यह निश्चल
तब पुत्र बाला (आत्मा उदयति) आत्मा उदय को प्राप्त होता
है ॥२२॥

(वसन्ततिलका) २६६

स्याद्वाददीपितलमन्महिमि प्रकाशे ।

शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति ॥

किं वधमोक्षपथपातिभिरन्यभावे ।

नित्योदयः परमयः स्फुरतु स्वभावः ॥२३॥

अर्थ—(स्याद्वाददीपितलमन्महिमि) स्याद्वाद के प्रकाश
में शामिल हो रहा है तब निम्न (शुद्धस्वभावमहिमिति) शुद्ध
स्वभाव की है महिमा किन्हीं ऐसे (इति) इस प्रकार का (प्रकाश)
प्रकाश (मयि) मैं में (उदिते) उदय होने पर (वधमोक्षपथ
पातिभिः) वध और मोक्ष मार्ग में गिराने वाले (अन्यभावे किं)
परमानों से क्या प्रयोजन है (नित्योदयः) निरन्तर उदय रूप (अयः)
यह (स्वभावः) स्वभाव (परः) सर्वोत्तम रूप से (स्फुरतु)
स्फुरनासे ॥ २३॥

(यसत्ततिलका) २७०

चित्रात्मशक्तिममुदायमयोऽयमात्मा ।

मयः प्रणश्यति नयेक्षणसख्यमान ॥

तस्मादस्मदमनिराकृतस्वखण्डमेव—

मेकान्तशान्तमचल चिदह महोऽस्मि ॥२४॥

अन्वयाथ—(चित्रात्मशक्तिसमुदायमय) याना प्रकार रा निज
शक्तिया का समुदाय रूप (नयच्छ स्खलमान) मया का दृष्टि म खण्ड
रूप भिन्न हुआ (अथ आत्मा) यह आत्मा (मयः प्रणश्यति)
मयाल नाश को प्राप्त होता है यह पण्य दृष्टि है (तस्मात्) हमजिये
(अहं अनिराकृतखण्ड) मैं नहीं कल्पित हुए हैं यह निमित्त प्रमा
(अस्मद एव) अस्मद एव (एका तशा तम्) एकात्म रूप से शान्त
आह (अचलचिन् महोऽस्मि) अचल चतन्य रूप तब वाला है ॥ २४ ॥

(शालिनी) २७१

योऽय भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि

ज्ञेयो ज्ञेय ज्ञानमात्र म नैव ।

ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गदु—

ज्ञानज्ञेयज्ञातृवद्वस्तुमात्र ॥२५॥

अन्वयाथ—(य अय ज्ञानमात्र भाव) यो यह जनकभाव है
(म) मया (अहं अस्मि) मैं हूँ (ज्ञेय) ज्ञानमात्र म भिन्न पदार्थ
(ज्ञेयो) ज्ञेय है लेकिन (म) यह ज्ञेय (ज्ञानमात्र नैव) ज्ञान

स्वरूप नहीं है किन्तु (ज्ञेयज्ञानकल्लोलप्रलगात्) ज्ञेय प्रगथा
के आशयों की जनक्य तरङ्गों में उद्भूतता हुआ (ज्ञानज्ञेय
क्षातृमात्) ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता रूप (वस्तुमात्र) वस्तु मान
(ज्ञेय) ज्ञेय है ॥ २५ ॥

(१२३) २८२

कचिल्लमति मेचक कचिदमेचकामेचक ।
कचित्पुनरमेचक सहजमेव तत्त्व मम ॥
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसा तत्तमन ।
परस्परसुमहत्प्रकटशक्तिचक्र स्फुरत् ॥ २६ ॥

अव्याख्य—(मम तत्त्व कचित् मेचक लमति) मेरा आमतौर
करी अनेकाने मान्य होता है और (कचित् मेचकामेचक)
कहीं अनेकाने और कहीं एकाका मालूम होता है (पुन कचित्
अमेचक) और कहीं पर एकाका मालूम होता है किन्तु वह (सहज
मम) स्वभावक्य है (तथापि तत्त अमलमेधसा) तो भी वह
निमल बुद्धिमानों के (मन न विमोहयति) चित्तको विमोह नही
करता (परस्परसुमहत्प्रकटशक्तिचक्र) क्योंकि वह परस्पर
का अन्तः तरङ्ग में मिलता हुआ प्रगट रूप शक्तियों का समुदायमय
(स्फुरत्) स्फुरावयन रहता है ॥ २६ ॥

(१२३) २८३

इतो गतमनेकता दधदित मदाप्येकता—
मित क्षणविभगुरु ध्रुमित मद्वोदयात् ॥

इत परमविस्तृत धृतमित प्रदेशोर्निजे ।
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुत वेभवम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—(इत) एक तरफ (अनेकता) अनेकाने को (गत) प्राप्त हुआ (इत) एकतरफ (मदापि) निरंतर (एकता) एकताको (दधत्) धारण करता हुआ (इत) एकतरफ (क्षणविभंगुर) क्षणभंगुर (इत) एकतरफ (सदैव) निरंतर ही (उच्यते) उच्यते स (भुज) भुज (इत) एक तरफ (परमविस्तृत) परम विस्तारपूर्ण (इत) एक तरफ (निचै प्रदेशौ धृत) अपने प्रदेशों से धारण किया गया (आत्मन तत् इदं सहजं) आत्मा का यह, यह स्वभावविशेष (अद्भुतं वेभवम्) विचित्र वैभव है (अहो) यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ २७ ॥

(शृङ्गा) २७४

कपायकलिरेकत. स्वलतिशातिरस्त्येकतो ।
भयोपहतिरेकत स्पृशतिमुक्तिरप्येकत ॥
जगत्त्रितयमेकत. स्फुरतिचिच्चकास्त्येकत ।
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुताद्भुत ॥२८॥

अन्वयार्थ—(एकत) एक तरफ (कपायकलि) कपाया की पाया (स्वलति) है (एकत शान्ति अस्ति) एक तरफ शान्ति अर्थात् कपायों का अभाव है (एवम् भयोपहति) एक तरफ संसार की पाड़ा है (एकत मुक्ति अपि स्पृशति) एक तरफ मुक्ति भी स्पर्श करती है (एकत जगत्त्रितय स्फुरति) एक तरफ तीनों जगत् स्फुरतमान हैं (एकत चिन् चकाम्नि) एक तरफ चान्दहा शोभित

है इम तरह (आत्मन अद्भुतान् अद्भुत) आत्मा का अद्भुत में
अद्भुत (स्वभावमहिमा विनश्यते) स्वभाव की महिमा विनश्य को
प्राप्त हो ॥ २८ ॥

(मालिनी) - ७७

जयति महजतेज पुंजमज्जत्त्रिलोकी ।
समलदग्निलप्रिकल्पोऽथेक एवस्वरूप ॥
स्वर्गमविमर्गपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः ।

प्रसन्नभनियमितार्चित्रिचन्द्रमत्कार एव ॥२९॥

अवधारण—(सहजतेज पुंजमज्जत्त्रिलोकीसमलदग्निल
विमर्ग) स्वभाविक प्रकाश समुदाय में प्रतिबिम्बित तीन लोक के
पराधा के स्तुत्यमान हैं सम्प्रति किन्तु निर्मम एका हाता हुआ भी
(एक स्वरूप पर) एक स्वरूप ही है (स्वरसजिसरूपणा
अद्भुततत्त्वोपलम्भ) आत्मिक रस के विस्तार से परिपूर्ण यच्छे-
अथान् वृत्ता गदित तर्जों की है प्राणि विमन ओर (प्रसन्नभनिय
मितार्चि) स्वयं रूप निहित है तैव निमग्न ऐगा (एव चिद्यम
त्कार जयति) यह क्षेत्र का चमत्कार अवशील हो ॥ २९ ॥

(मालिनी) - ७८

अविचलितचिदात्मन्यात्मनात्मानमात्म—
न्यनवरतनिमग्न धारयदभस्तमाहम् ॥
उदितममृतचन्द्रज्योतिरेतत्समन्ता—
ज्ज्वलतु विमलपूर्णनिमपत्नस्वभाव ॥३०॥

अनवसर्ग—(अविचलितचिदात्मनि) निश्चल चैतन्य स्वरूप
आमा में (आत्मना) अपने द्वारा (आनन्दतन्मित्रा) निरंतर
लान (आत्मां) करने का (धारयत्) धारण करता हुआ
(ध्यस्तमोह) अधस्तार का नाशक (निमग्नस्वभाव)
कमल्य बेरिया स क्षर है समाप्त विधा (निमलपूर्ण) निमल और
परिपूर्ण (चित्त) उन्म को प्राप्त हुआ (गत) यह (अमृत
चन्द्रयोनि) अमृत रूप चन्द्रमा के समान प्रकाश (ममतात् उपात्त)
ममता प्रकाशमान रहे ॥ १० ॥

(शार्ङ्गलजिजीविषत) २७७

यस्माद्धेतुमभूत्पुरा स्वपरयोभूत यतोऽत्रान्तरं
रागद्वेषपरिमहे सति यता जात क्रियाकारकै
भुजाना च यतोनुभूतिरग्निलग्नान्नान्नयाया फल
तद्विज्ञानघनोद्यमगन्तुना विचिन्नकिञ्चित्फल ॥

अन्वय—(य स्मात् पुरा स्वपरया भूतं अभूत) जिस
अज्ञान से पुर समय में अथा अनादि से स्वयं कहिये अपनी आर
पर का द्वैतरूप एका हुआ (यत अत्र अत्र भूत) जिस इत से
जस आमा में अन्तभूत हुआ (यत) और जिस अन्तर से (राग
द्वेषपरिमहे सति क्रियाकारकै) रागद्वेषरूप परिमह के होने पर
क्रिया और कारक (जात) हुए (यत) जिस क्रियाकारक से (क्रिया
या अग्नित्त फल भुजाना अनुभूति) क्रिया के समान फल को
भोली हुई स्वाभूति (विज्ञा) विचार को प्राप्त हुई (तत अधुना
विज्ञानघनोद्यमगन्तुना) यह अज्ञान इत समय विज्ञान घन अनुगम में

(१६०)

लान हुआ (निल किंचित् किंचित्) निश्चय म कुछ भी मालूम नहीं होता ॥ ३१ ॥

(उपजाति) २५८

स्वशक्तिससूचितस्तुतवै—

व्याख्याकृतेय समयस्यशब्दै ॥

स्वरूपगुणतस्य न किंचिदस्ति

कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरे ॥३२॥

अन्वय — (स्वशक्तिससूचितस्तुतवै) अपना शक्ति से प्रगट कर लिया है समस्त वस्तु के स्वरूप को बिहाने एम (शब्दै) शब्द से (समयस्य) आत्मा और समयसार नामा शब्द की (इय) यह (व्याख्या कृता) व्याख्या की गई है (स्वरूपगुणतस्य) आत्मस्वरूप में लीन (मम) मुझ (अमृतचन्द्रसूर) अमृत चन्द्र आचार्य का (किंचित् कर्तव्यमेव न अस्ति) कुछ भी कर्तव्य नहीं है ॥ ३२ ॥



गह्वरी ज्ञानानन्दजी कृत

जनि पुण्य उण्य मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया ।

अब तब तुमरो निज जान दुख पाये निज गुण हान ॥

पाये अनन्त दुख अवतर, जगन को निज जानकर ॥

नपन भाषित जगत हितकर कर्म नहिं पढ़िचानकर ।

भय उय कारन मुख प्रचारन विषय म मुख मानकर ॥

निज पर विषयन नामय सुखविधि मुधा नहिं पाकर ॥१॥

तब पर मम उर म अय, जनि कुमनि विमोह पाये ।

निज ज्ञानरूप तर जागी कनि पूर्ण रहित मैं लागी ॥

रनि लगी दिम म आत्म क, सत मग म अत्र म लगा ।

मनम हुइ अत्र भावता, तब मनि म जाऊँ रगा ॥

प्रिय वचन की हो दय गुण गति गात्र म न चित पनें ।

शुभ शास्त्र का निज हो मनन मन शेष जादन म भगै ॥२॥

अत्र समता उर म लागे, द्वाण अमुखा भाकर ।

समता मय भूत मगाकर, मुनिप्रत धाले बन जाकर ॥

धर कर दिगजर रूप कय, अठ्ठांस गुण पालन करे ।

नेत्रास परिषद रह सत्, शुभ धम मश धारण करे ॥

तब तप द्वाण क्षिति मुखा निज, बर आधार परिहरे ।

अत्र राक नूतन कर्म सचिन, कम रिपु को निहरे ॥३॥

का धय गुणसर पावे, तब निज म ही रम जाऊँ ।

कर्तादिक भेद मिटाऊ, रागादिक नर भगाऊँ ॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करे ।

गल घात दर्शन मुय अनुल गति, चारित्र धार्मिक आचरे ॥

गंगा नन्द जिनो द्र था, उपदेश का निज उचरे ॥

आबै अमर कय हुय निज, 'तब' दुख मयमागर तिरु ॥

सुदृढ—

त्यागी फाइन आर्ट प्रेम

वन्ता भुवनामराय दिल्ली
